॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

# कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्

# विषय सूची


॥अथ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥ ..... 3

प्रथम अध्याय ..... 4

द्वितीय अध्याय ..... 17

तृतीय अध्याय ..... 38

चतुर्थ अध्याय ..... 53

शान्ति पाठ ..... 68

॥ श्री हरि ॥

# ॥अथ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥

श्रीमत्कौषीतकीविद्यावेद्यप्रज्ञापराक्षरम् ।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तब्रह्ममात्रं विचिन्तये ॥

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु
तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूंगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ श्री हरि ॥

# ॥ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥

## ॥कौषीतकि उपनिषद् ॥

## ॥अथ प्रथमाध्याये॥

## प्रथम अध्याय

चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यक्षमाण आरुणिं वव्रे स ह पुत्रं

श्वेतकेतुं प्रजिघाय याजयेति तं हासीनं पप्रच्छ
गौतमस्य पुत्रास्ते संवृतं लोके यस्मिन्माधास्यस्यन्यमहो
बद्ध्वा तस्य लोके धास्यसीति स होवाच नाहमेतद्वेद
हन्ताचार्यं प्रच्छानीति स ह पितरमासाद्य पप्रच्छेतीति
मा प्राक्षीत्कथं प्रतिब्रवाणीति स होवाचाहमप्येतन्न वेद
सदस्येव वयं स्वाध्यायमधीत्य हरामहे यन्नः परे
ददत्येह्युभौ गमिष्याव इति ॥ स ह समित्पाणिश्चित्रं
गार्ग्यायणिं प्रतिचक्रम उपायानीति तं होवाच ब्रह्मार्होसि
गौतम यो मामुपागा एहि त्वा ज्ञपयिष्यामीति ॥ १॥

गर्ग के प्रपौत्र सुप्रसिद्ध महात्मा चित्र यज्ञ करनेवाले थे। इसके लिये उन्होंने अरुण के पुत्र उद्दालक को प्रधान ऋत्विक् के रूप में वरण

किया । परतु उन प्रसिद्ध उद्दालक मुनि ने स्वयं न पधारकर अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजा और कहा- 'वत्स ! तुम जाकर चित्रका यज्ञ कराओ । श्वेतकेतु यज्ञ में पधारकर एक ऊँचे आसन पर विराजमान हुए। उन्हें आसन पर बैठे देख चित्र ने पूछा- 'गौतम-कुमार ! इस लोकमें कोई ऐसा आवृत (आवरणयुक्त ) स्थान है, जिसमें मुझे ले जाकर रखोगे अथवा कोई उससे भिन्न- सर्वथा विलक्षण आवरणशून्य पद है, जिसे जानकर तुम उसी लोकमें मुझे स्थापित करोगे । श्वेतकेतु ने कहा- मैं यह सब नहीं जानता । किंतु यह प्रश्न सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई है। मेरे पिता आचार्य हैं- शास्त्रके गूढ अर्थका ज्ञान रखते हैं, दूसरे लोगों को शास्त्रीय आचार में लगाते और स्वयं भी शास्त्र के अनुकूल ही आचरण करते हैं; अतः उन्हींसे यह बात पूछूँगा । यों कहकर वे अपने पिता आरुणि (उद्दालक ) के पास गये और प्रश्न को सामने रखते हुए बोले- पिताजी ! चित्रने इस इस प्रकार से मुझसे प्रश्न किया है । सो इसके सम्बन्धमें मैं किस प्रकार उचर दूँ ? उद्दालक ने कहा- "वत्स ! मैं भी इस प्रश्नका उत्तर नहीं जानता । अब हमलोग महाभाग चित्र की यज्ञशाला में ही इस तत्त्व का अध्ययन करके इस विद्याको प्राप्त करेंगे । जब दूसरे लोग हमें विद्या और धन देते हैं तो चित्र भी देंगे ही। इसलिये आओ, हम दोनों चित्रके पास चलें । वे प्रसिद्ध आरुणि मुनि हाथमें समिधा ले जिज्ञासु के वेष में गर्ग के प्रपौत्र चित्र के यहाँ गये । 'मैं विद्या ग्रहण करनेके लिये तुम्हारे पास आया हूँ। इस भावना को व्यक्त करते हुए उन्होंने चित्र के समीप गमन किया । उन्हें इस प्रकार आया देख चित्रने कहा- गौतम ! तुम ब्राह्मणोंमें पूजनीय एव ब्रह्मविद्या के अधिकारी हो; क्योंकि मेरे जैसे लघु व्यक्ति के पास आते समय तुम्हारे मन में अपने बड़प्पन का अभिमान नहीं

हुआ है । इसलिये आओ, तुम्हें निश्चय ही इस पूछे हुए विषय का स्पष्ट ज्ञान कराऊँगा' ॥ १ ॥

स होवाच ये वैके चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते
सर्वे गच्छन्ति तेषां प्राणैः पूर्वपक्ष
आप्यायतेऽथापरपक्षे न प्रजनयत्येतद्वै स्वर्गस्य लोकस्य
द्वारं यश्चन्द्रमास्तं यत्प्रत्याह तमतिसृजते य एनं
प्रत्याह तमिह वृष्टिर्भूत्वा वर्षति स इह कीटो वा
पतङ्गो वा शकुनिर्वा शार्दूलो वा सिंहो वा मत्स्यो वा
परश्वा वा पुरुषो वान्यो वैतेषु स्थानेषु प्रत्याजायते
यथाकर्म यथाविद्यं तमागतं पृच्छति कोऽसीति तं
प्रतिब्रूयाद्विचक्षणादृतवो रेत आभृतं
पञ्चदशात्प्रसूतात्पित्र्यावतस्तन्मा पुंसि कर्तर्येरयध्वं
पुंसा कर्त्रा मातरि मासिषिक्तः स जायमान उपजायमानो
द्वादशत्रयोदश उपमासो द्वादशत्रयोदशेन पित्रा
सन्तद्विदेहं प्रतितद्विदेहं तन्म ऋतवो मर्त्यव आरभध्वं
तेन सत्येन तपसर्तुरस्म्यार्तवोऽस्मि कोऽसि त्वमस्मीति
तमतिसृजते ॥ २॥

सुप्रसिद्ध यज्ञकर्ता चित्र ने इस प्रकार उपदेश आरम्भ किया- ब्रह्मन् ! जो कोई भी अग्निहोत्रादि सत्कर्मो का अनुष्ठान करनेवाले लोग हैं, वे सब के-सब जब इस लोकसे प्रयाण करते हैं तो चन्द्रलोक अर्थात् स्वर्ग में ही जाते हैं । उनके प्राणों से चन्द्रमा शुक्लपक्ष में पुष्टि को प्राप्त होते है । वे (चन्द्रमा) कृष्णपक्ष में उन स्वर्गवासी जीवों की तृप्ति नहीं कर पाते । निश्चय ही यह स्वर्गलोक का द्वार है, जो कि चन्द्रमा

के नाम से प्रसिद्ध है । जो अधिकारी उस स्वर्गरूपी चन्द्रमा का प्रत्याख्यान कर देता है, उस पुरुषको उसका वह शुभ संकल्प चन्द्रलोक से भी ऊपर नित्य ब्रह्मलोकमे पहुँचा देता है। परन्तु जो स्वर्गीय सुख के प्रति ही आसक्त होने के कारण उस चन्द्रलोक को अस्वीकार नहीं करता, उस सकाम कर्मी स्वर्गवासी को, उसके पुण्य भोग की समाप्ति होने पर, देववर्ग वृष्टि के रूपमें परिणत करके इस लोकमें ही पुनः बरसा देता है। वह वर्षा के रूप में यहाँ आया हुआ अनुशयी जीव अपनी पूर्व-वासना के अनुसार कीट अथवा पतङ्ग या पक्षी, अथवा व्याघ्र या सिंह अथवा मछली, या सांप-बिच्छू अथवा मनुष्य या दूसरा कोई जीव होकर इनके अनुकूल शरीरों में अपने कर्म और विद्या-उपासना के अनुसार जहाँ-कहीं उत्पन्न होता है। उस अपने समीप आये हुए शिष्य से दयालु एवं तत्त्वज्ञ गुरु इस प्रकार पूछे- वत्स ! तुम कौन हो ? गुरु के इस प्रकार प्रश्न करने पर शिष्य उत्तर दे- 'हे देवगण ! जो पञ्चदशकलात्मक- शुक्ल और कृष्णपक्ष के हेतुभूत, श्रद्धाद्वारा प्रकट, पितृलोकस्वरूप एवं नाना प्रकार के भोग प्रदान करने में समर्थ हैं, उन चन्द्रमा के निकट से प्रादुर्भूत होकर पुरुषरूप अग्नि में स्थापित हुआ जो श्रद्धा, सौम, वृष्टि और अन्न का परिणामभूत वीर्य है, उस वीर्य के ही रूप में स्थित हुए मुझ अनुशयी जीव को तुमने वीर्याधान करने वाले पुरुष में प्रेरित किया । तत्पश्चात् गर्भाधान करने वाले पुरुष (पिता) के द्वारा तुमने मुझे माता के गर्भ में भी स्थापित करवाया। कुछ सवत्सरों तक जीवन धारण करने वाले पिता के साथ मैं एकता को प्राप्त हुआ था । मैं स्वयं भी कुछ सवत्सरों तक ही जीवन धारण करने वाला होकर ब्रह्मज्ञान अथवा उसके विपरीत मिथ्याज्ञान के निमित्त योनिविशेष में शरीर

धारण करके स्थित हूँ । इसलिये अब मुझे अमृतत्व की प्राप्तिके साधनभूत ब्रह्मा के लिये अनेक ऋतुओं तक अक्षय रहने वाली दीर्घ आयु प्रदान करें- ब्रह्मसाक्षात्कारपर्यन्त मेरे दीर्घजीवन के लिये चिरस्थायिनी आयु की पुष्टि करें। क्योंकि यह जानकर मैं देवताओं से प्रार्थना करता हूँ, अतः उसी सत्य से, उसी तपस्या से, जिनका मैं अभी उल्लेख कर आया हूँ, मैं ऋतु हूँ-संवत्सरादिरूप मरणधर्मा मनुष्य हूँ आर्तव हूँ- ऋतु से उत्पन्न देह हैं। यदि ऐसी बात नहीं है तो आप ही कृपापूर्वक बतायें, मैं कौन हूँ ? क्या जो आप हैं, वही मैं भी हूँ ? उसके इस प्रकार कहनेपर संसार-भय से डरे हुए उस शिष्य को गुरु ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा भवसागर से पार करके बन्धनमुक्त कर देता है ॥ २ ॥

स एतं देवयानं पन्थानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स
वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स
प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं तस्य ह वा एतस्य
ब्रह्मलोकस्यारोहृदो मुहूर्ता येष्टिहा विरजा नदी तिल्यो
वृक्षः सायुज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती
द्वारगोपौ विभुं प्रमितं विचक्षणासन्ध्यमितौजाः प्रयङ्कः
प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी
पुष्पाण्यादायावयतौ वै च
जगत्यम्बाश्चाम्बावयवाश्चाप्सरसोऽबयानद्यस्तमित्थंविद
अ गच्छति तं ब्रह्माहाभिधावत मम यशसा विरजां
वायं नदीं प्रापन्नवानयं जिगीष्यतीति ॥ ३॥

वह परब्रह्म का उपासक पूर्वोक्त देवयान-मार्ग पर पहुँचकर पहले अग्निलोक में आता है, फिर वायुलोक में आता है; वहाँ से वह सूर्यलोक में आता है, तदनन्तर वरुणलोक में आता है; तत्पश्चात् वह इन्द्रलोक में आता है, इन्द्रलोक से प्रजापतिलोक में आता है तथा प्रजापतिलोक से ब्रह्मलोक में आता है। इस प्रसिद्ध ब्रह्मलोक के प्रवेश-पथ पर पहले 'आर' नाम से प्रसिद्ध एक महान् जलाशय है । उस जलाशयसे आगे मुहूर्ताभिमानी देवता हैं, जो काम-क्रोध आदि की प्रवृत्ति उत्पन्न करके ब्रह्मलोक-प्राप्ति के अनुकूल की हुई उपासना और यज्ञ-यागादि के पुण्य को नष्ट करने के कारण येष्टिह कहलाते हैं। उससे आगे विजरा नदी है, जिसके दर्शनमात्र से जरावस्था दूर हो जाती है। उससे आगे इल्य नामक वृक्ष है । 'इला' पृथिवी का नाम है, उसका ही स्वरूप होनेसे उसका नाम 'इल्य है। उससे आगे अनेक देवताओं द्वारा सेव्यमान उद्यान, बावली, कुएँ, तालाब और नदी आदि भांति-भांति के जलाशयों से युक्त एक नगर है, जिसके एक ओर तो विजरा नदी है और दूसरी ओर प्रत्यञ्चा के आकार का (अर्द्धचन्द्राकार ) एक कोटा है । उसके आगे ब्रह्माजीका निवासभूत विशाल मन्दिर है, जो अपराजित नाम से प्रसिद्ध है। सूर्य के समान तेजोमय होने के कारण वह कभी किसी के द्वारा पराजित नहीं होता । मेघ और यज्ञरूप से उपलक्षित वायु और आकाशरूप इन्द्र और प्रजापति उस ब्रह्म-मन्दिर के द्वाररक्षक हैं। वहाँ विभुप्रमित नामक सभामण्डप है । उसके मध्यमागमें जो वेदी है, वह. 'विचक्षणा' नाम से प्रसिद्ध है । वह अत्यन्त विलक्षण है। जिसके बल का कोई माप नहीं है, वह अमितौजाः प्राण ही ब्रह्माजी का सिंहासन पलँग है ! मानसी उनकी प्रिया है। वह मन की कारणभूता अथवा मन को

आनन्दित करनेवाली होने से ही मानसी कहलाती है। उसके आभूषण भी उसी के स्वरूपभूत हैं । उसकी छायामूर्ति 'चाक्षुषी' नाम से प्रसिद्ध है । वह तैजस नेत्रों की प्रकृति होने के कारण अत्यन्त तेजोमयी है । उसके आभूषणादि भी उसी के समान तेजोमय हैं । जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज-इन चतुर्विध प्राणियों का नाम जगत् है। यह सम्पूर्ण जगत्- जड-चैतन-समुदाय ब्रह्माजी की वाटिका के पुष्प तथा उनके धौत एवं उत्तरीयरूप युगल वस्त्र हैं। वहाँ की अप्सराएँ- साधारण युवतियाँ 'अम्बा' और 'आम्बायवी' नामसे प्रसिद्ध हैं। जगजननी श्रुतिरूपा होने से वे 'अम्बा' कहलाती हैं। तथा अम्ब (अधिक) और अयव (न्यून ) भावसे रहित बुद्धिरूपा होनेसे उनका नाम 'आम्बायवी' है । इसके सिवा वहाँ 'अम्बया' नाम की नदियाँ बहती हैं। अम्बक ( नेत्र ) रूप ब्रह्मज्ञान की ओर ले जाने के कारण उनकी 'अम्बया' संज्ञा है । उस ब्रह्मलोक को जो इस प्रकार जानता है, वह उसी को प्राप्त होता है। उसे जब कोई अमानव पुरुष आदित्यलोक से ले आता है। उस समय ब्रह्माजी अपने परिचारकों और अप्सराओं से कहते हैं- दौड़ो, उस महात्मा पुरुष का मेरे यश के मेरी प्रतिष्ठा के अनुकूल स्वागत करो, मेरे लोक में ले आने वाली उपासना आदि से निश्चय ही यह उस विजरा नदी के समीप तक आ पहुँचा है, अवश्य ही अब यह कभी जरावस्था को नहीं प्राप्त होगा ॥३॥

तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालाहस्ताः
शतमाञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः
शतं कणाहस्तास्तं ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कुर्वन्ति स

ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कृतो ब्रह्म विद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति स
आगच्छत्यारं हृदं तन्मनसात्येति तमृत्वा सम्प्रतिविदो
मज्जन्ति स आगच्छति मुहूर्तान्येष्टिहांस्तेऽस्मादपद्रवन्ति
स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैवात्येति
तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते तस्य प्रिया ज्ञातयः
सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतं तद्यथा रथेन
धावयन्नथचक्रे पर्यवेक्षत एवमहोरात्रे पर्यवेक्षत एवं
सुकृतदुष्कृते सर्वाणि च द्वन्द्वानि स एष विसुकृतो
विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥४॥

ब्रह्माजी का यह आदेश मिलने पर उसके पास स्वागत के लिये पाँच सौ अप्सराएँ जाती हैं। उनमें से सौ अप्सराएँ तो हाथों में हल्दी, केसर और रोली आदि के चूर्ण लिये रहती हैं। सौ के हाथों में भांति-भांति के दिव्य वस्त्र एव अलङ्कार होते हैं। सौ अप्सराएँ हाथों में फल लिये होती हैं। सौ के हाथों में नाना प्रकार के दिव्य अङ्गराग होते हैं । तथा सौ अप्सराएँ अपने हाथमें भाँति-भाँति की मालाएँ लिये होती हैं । वे उस महात्मा को ब्रह्मोचित अलङ्कारोंसे अलंकृत करती हैं। वह ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्माजी के योग्य अलङ्कारों से अलंकृत हो ब्रह्माजी के स्वरूप को ही प्राप्त कर लेता है । फिर वह 'आर' नामक जलाशय के पास आता है और उसे मन के द्वारा सङ्कल्प से ही लाँघ जाता है। उस जलाशयतक पहुँचने पर भी अज्ञानी मनुष्य उसमें डूब जाते हैं। फिर वह ब्रह्मवेत्ता मुहूर्ताभिमानी येष्टिह नामक देवताओं के पास आता है, किंतु वे विघ्नकारी देवता उसके पास से भाग खड़े होते हैं। तत्पश्चात् वह विजरा नदी के तट पर आता है और उसे भी सङ्कल्प से ही पार कर लेता है। वहाँ वह पुण्य और पाप को झाड़ देता है। जो

उसके प्रिय कुटुम्बी होते हैं, वे तो उसका पुण्य पाते हैं, और जो उससे द्वेष करनेवाले होते हैं, उन्हें उसका पाप मिलता है। उस विषयमें यह दृष्टान्त है । रथसे यात्रा करने वाला पुरुष रथ को दौड़ाता हुआ रथ के दोनों चक्रों को देखता है; उस समय रथचक्र का जो भूमि से सयोग-वियोग होता है, वह उस द्रष्टा को नहीं प्राप्त होता । इसी प्रकार वह ब्रह्मवेत्ता रात और दिन को देखता है, पुण्य और पापको देखता है, तथा अन्य समस्त द्वन्द को देखता है; द्रष्टा होनेके कारण ही उसका इनसे सम्बन्ध नहीं होता । अतएव यह पुण्य और पाप से रहित होता है। फलतः वह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

स आगच्छति तिल्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति स
आगच्छति सायुज्यं संस्थानं तं ब्रह्म स प्रविशति
आगच्छत्यपराजितमायतनं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स
आगच्छतीन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावस्मादपद्रवतः स
आगच्छति विभुप्रमितं तं ब्रह्मयशः प्रविशति स
आगच्छति विचक्षणामासन्दीं बृहद्रथन्तरे सामनी
पूर्वौ पादौ ध्यैत नौधसे चापरौ पादौ वैरूपवैराजे
शाक्ररैवते तिरश्ची सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति स
आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्कं स प्राणस्तस्य भूतं च
भविष्यच्च पूर्वौ पादौ श्रीश्चेरा चापरौ
बृहद्रथन्तरे अनूच्ये भद्रयज्ञायज्ञीये
शीर्षण्यमृचश्च सामानि च प्राचीनातानं यजूंषि
तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्गीथ उपश्रीः
श्रीरुपबर्हणं तस्मिन्ब्रह्मास्ते तमित्थंवित्पादेनैवाग्र
आरोहति तं ब्रह्माह कोऽसीति तं प्रतिब्रूयात् ॥ ५॥

तब वह इल्य वृक्ष के पास आता है, उसकी नासिका में ब्रह्मगन्धका प्रवेश होता है । फिर वह सालज्य नगरके समीप आता है, वहाँ उसकी रसना में उस दिव्यातिदिव्य ब्रह्मरस का प्रवेश होता है, जिसका उसे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ रहता । फिर वह अपराजित नामक ब्रह्म-मन्दिर के समीप आता है, वहाँ उसमें ब्रह्मतेज प्रवेश करता है। तत्पश्चात् वह द्वार-रक्षक इन्द्र और प्रजापति के पास आता है। वे उसके सामने से मार्ग छोड़कर हट जाते हैं । तदनन्तर वह विभुप्रमित नामक सभा-मण्डप में आता है; वहाँ उसमें ब्रह्मयश प्रवेश करता है। फिर वह विचक्षणा नामक वेदीके पास आता है । 'बृहत्' और 'रथन्तर'- थे दो साम उसके दोनों अगले पाये हैं और 'श्यैत' एव 'नौधस' नामक साम उसके दोनों पिछले पाये हैं। 'वैरूप' और 'वैराज' नामक साम उसके दक्षिण और उत्तर पार्श्व हैं। तथा 'शाकर' और रैवत' साम उसके पूर्व एव पश्चिम पार्श्व हैं। वह समष्टि-बुद्धिरूपा है। वह ब्रह्मवेत्ता उस बुद्धि के द्वारा विशेष दृष्टि प्राप्त कर लेता है। फिर वह 'अमितौजाः' नामक पलंग के पास आता है, वह पर्यङ्क प्राणस्वरूप है। भूत और भविष्य ये दोनों काल उसके अगले पाये हैं। और श्रीदेवी एवं भूदेवी- ये दोनों उसके पिछले पाये हैं। उसके दक्षिण-उत्तर भागमें जो 'अनूच्य' नामके दीर्घ खटवाङ्ग हैं, वे 'बृहत्' और 'रथन्तर' नामक साम हैं और पूर्व पश्चिम भागमें जो छोटे खटवाङ्ग हैं, जिन पर मस्तक और पैर रखे जाते हैं, वे 'भद्र' और 'यज्ञायज्ञीय' नामक साम हे । पूर्व से पश्चिम को जो बड़ी-बड़ी पाटियाँ लगी हैं, वे ऋक और साम के प्रतीक हैं । तथा दक्षिण-उत्तरकी और जो आड़ी-तिरछी पाटियाँ हैं, वे यजुर्वेदस्वरूपा हैं । चन्द्रमाकी कोमल किरणें ही उस पलेंग का नरम-नरम गद्दा है। उद्गीथ ही उस पर विछी

हुई उपश्री ( श्वेत चादर ) है । लक्ष्मीजी तकिया हैं । ऐसे दिव्य पर्यङ्क पर ब्रह्माजी विराजमान होते हैं । इस तत्त्वको इस प्रकार जानने वाला ब्रह्मवेत्ता उस पलँग पर पहले पैर रखकर चढता है, तब ब्रह्माजी उससे पूछते हैं- तुम कौन हो ? उनके प्रश्न का वह इस प्रकार उत्तर दे-॥ ५ ॥

ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः सम्भूतो भार्यायै रेतः
संवत्सरस्य तेजोभूतस्य भूतस्यात्मभूतस्य त्वमात्मासि
यस्त्वमसि सोहमस्मीति तमाह कोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रूयात्किं
तद्यत्सत्यमिति यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ
यद्देवाच्च प्राणाश्च तद्यं तदेतया वाचाभिव्याह्रियते
सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसीत्येवैनं तदाह
तदेतच्छलोकेनाप्युक्तम् ॥ ६॥

मैं वसन्त आदि ऋतुरूप हूँ। ऋतुसम्बन्धी हूँ। कारणभूत अव्याकृत आकाश एवं स्वयप्रकाश परब्रह्म परमात्मा से उत्पन्न हुआ हूँ। जो भूत ( अतीत ); भूत ( यथार्थ कारण ), भूत (जडचेतनमय चतुर्विध सर्ग ) और भूत (पञ्चमहाभूतस्वरूप) है, उस संवत्सर का तेज हूँ। आत्मा हूँ। आप आत्मा हैं, जो आप हैं, वही मैं हूँ । इस प्रकार उत्तर देने पर ब्रह्माजी पुनः पूछते हैं- मैं कौन हूँ ? इसके उत्तर में कहे- आप सत्य हैं। जो सत्य है, जिसे तुम सत्य कहते हो, वह क्या है ! ऐसा प्रश्न होनेपर उत्तर दे- जो सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणोंसे भी सर्वथा भिन्न-विलक्षण हो, वह 'सत्' है। और जो देवता एवं प्राणरूप है, वइ 'त्य' है। वाणीके

द्वारा जिसे 'सत्य' कहते हैं, वह यही है। इतना ही यह सब कुछ है । आप यह सब कुछ हैं, इसलिये सत्य हैं ॥ ६ ॥

यजूदरः सामशिरा असावृङ्मूर्तिरव्ययः । स ब्रह्मेति हि विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महानिति ॥

तमाह केन पौंस्नानि नामान्याप्नोतीति प्राणेनेति ब्रूयात्केन स्त्रीनामानीति वाचेति केन नपुंसकनामानीति मनसेति केन गन्धानिति घ्राणेनेति ब्रूयात्केन रूपाणीति चक्षुषेति केन शब्दानिति श्रोत्रेणेति केनान्नरसानिति जिह्वयेति केन कर्माणीति हस्ताभ्यामिति केन सुखदुःखे इति शरीरेणेति केनानन्दं रतिं प्रजापतिमित्युपस्थेनेति केनेत्या इति पादाभ्यामिति केन धियो विज्ञातव्यं कामानिति प्रज्ञयेति प्रब्रूयात्तमहापो वै खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति सा या ब्रह्मणि चितिर्या व्यष्टिस्तां चितिं जयति तां व्यष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७॥

यही बात ऋक्सम्बन्धी मन्त्रद्वारा भी बतायी गयी है । यजुर्वेद जिसका उदर है, सामवेद मस्तक है तथा ऋग्वेद सम्पूर्ण शरीर है, वह अविनाशी परमात्मा "ब्रह्मा' के नाम से जाननेयोग्य है । वह ब्रह्ममय– ब्रह्मरूप महान् ऋषि है । तदनन्तर पुनः ब्रह्माजी उस उपासकसे पूछते हे- "तुम मेरे पुरुषवाचक नाम को किससे प्राप्त करते हो, वह उत्तर दे- प्राण से । स्त्रीवाचक नामको किससे ग्रहण करते हो– वाणी से । नपुसकवाचक नामको किससे ग्रहण करते हो– मन से । गन्धको अनुभव किससे करते हो– प्राण से- घ्राणेन्द्रिय से, इस प्रकार कहे । रूप को ग्रहण किससे करते हो– नेत्रसे । शब्दों को किससे सुनते

हो– कानोंसे । अन्न के रस का आस्वादन किससे करते हो- जिह्वा से । कर्म किससे करते हो– हाथों से । सुख-दुख का अनुभव किससे करते हो– शरीर से । रति का परिणामरूप आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति का सुख किससे उठाते हो– उपस्थ-इन्द्रिय से, यों कहे । गमन की क्रिया किससे करते हो– दोनो पैरों से । बुद्धि-वृत्ति को, ज्ञातव्य विषयों को और विविध मनोरथ को किससे ग्रहण करते हो प्रज्ञा से, यों कहे । तब ब्रह्मा उससे कहते हैं—जल आदि प्रसिद्ध पाँच महाभूत मेरे स्थान हैं; अतः यह मेरा लोक भी जलादि-तत्त्व प्रधान ही है। तुम मुझसे अभिन्न मेरे उपासक हो, अतः यह तुम्हारा भी लोक है । वह जो ब्रह्माजी की सुप्रसिद्ध विजय तथा सर्वत्र व्याप्ति– सर्वव्यापकता है, उस विजय को तथा उस सर्वव्यापकताको भी वह उपासक प्राप्त कर लेता है, जो इस प्रकार जानता है॥ ७ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥

## ॥अथ द्वितीयोध्याये॥

## द्वितीय अध्याय

प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कौषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य
ब्रह्मणो मनो दूतं वाक्परिवेष्ट्री चक्षुर्गात्रं श्रोत्रं
संश्रावयितृ यो ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं
वेद दूतवान्भवति यो वाचं परिवेष्ट्रीं
परिवेष्ट्रीमान्भवति तस्मै वा एतस्मै प्राणाय ब्रह्मण एताः
सर्वा देवता अयाचमाना बलिं हरन्ति तथो एवास्मै सर्वाणि
भूतान्ययाचमानायैव बलिं हरन्ति य एवं वेद
तस्योपनिषन्न याचेदिति तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वा
लब्धोपविशेन्नाहगतो दत्तमश्नीयामिति य एवैनं
पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त
इत्येष धर्मो याचतो भवत्यनन्तरस्तेवैनमुपमन्त्रयन्ते
ददाम त इति ॥ १॥

प्राण ब्रह्म है। यह सुप्रसिद्ध ऋषि कौषीतकि कहते हैं। उन प्रसिद्ध प्राणमय ब्रह्म की यहाँ राजा के रूप में कल्पना की गयी है। उनका मन ही दूत है, वाणी परोसनेवाली स्त्री (रानी ) है, चक्षु सरक्षक (मन्त्री) है, श्रोत्रेन्द्रिय सन्देश सुनानेवाला द्वारपाल है। उन सुप्रसिद्ध प्राणमय ब्रह्म को बुना माँगे ही ये सम्पूर्ण इन्द्रियाभिमानी देवतागण भेंट

समर्पित करते हैं उनके अधीन होकर रहते हैं। इसी प्रकार जो इस प्रकार जानता है, उसको भी सम्पूर्ण चराचर प्राणी बिना माँगे ही भेंट देते हैं। उस प्राणोपासक के लिये यह गूढ व्रत है कि वह किसीसे कुछ भी न माँगे ठीक उसी तरह, जैसे कोई भिक्षु गाँव में भीख माँगने पर भी जब कुछ नहीं पाता तो हताश होकर बैठ रहता और कुपित होकर यह प्रतिज्ञा कर लेता है। कि अब से इस गाँव वाले लोगों के देने पर भी यहाँ का अन्न नहीं खाऊँगा । तात्पर्य यह कि वह भिक्षु जिस दृढता से अपनी बात पर डटा रहता है, उसी प्रकार उसको भी अपने व्रत पर अटल रहना चाहिये। जो लोग पहले इस पुरुष को कुछ देनेसे अस्वीकार कर चुके होते हैं, वे ही कुछ न माँगने का निश्चय कर लेने पर इसे देने के लिये निमन्त्रित करते हैं और कहते हैं, 'आओ, हम तुम्हें देते हैं। दीनतापूर्वक दूसरोंके सामने प्रार्थना करना यह याचक का धर्म होता है। अर्थात् याचना करनेवालेको ही दैन्य-प्रदर्शन करना पड़ता है। याचना और दैन्य-प्रदर्शन से दूर रहनेपर ही उसे लोग यों निमन्त्रण देते हैं कि आओ, हम तुम्हें देंगे ॥ १ ॥

प्राण ब्रह्म है– प्रसिद्ध महात्मा पैङ्गय भी यही कहते हैं। उन प्रसिद्ध प्राणमय ब्रह्म के लिये वाणी से परे चक्षु-इन्द्रिय है, जो वागिन्द्रिय को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है। चक्षु से परे श्रवणेन्द्रिय है, जो चक्षु को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है, श्रवणेन्द्रिय से परे मन है, जो श्रवणेन्द्रिय को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है, क्योंकि मन के सावधान रहने पर ही श्रवणेन्द्रिय सुन पाती है। मन से परे प्राण है, जो मन को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है । उस प्राणमय ब्रह्म को

ये सम्पूर्ण देवता उसके न माँगने पर भी उपहार समर्पित करते हैं। इसी प्रकार जो यह जानता है, उस उपासक को भी सम्पूर्ण प्राणी बिना माँगे ही भांति-भांति के उपहार भेंट करते हैं। उसका यह गूढ़ व्रत है कि वह किसी से याचना न करे । इस विषय में यह दृष्टान्त भी है- कोई भिक्षु गाँव में भीख माँगने पर भी जब कुछ नहीं पाता तो हताश होकर बैठ रहता और यह प्रतिज्ञा कर लेता है कि अब यहाँ किसी के देने पर भी अन्न ग्रहण नहीं करूंगा । ऐसी प्रतिज्ञा कर लेने पर जो लोग पहले उसे कुछ देने से अस्वीकार कर चुके होते हैं, वे ही उसे यों कहकर निमन्त्रित करते हैं कि आओ, हम तुम्हें देते हैं। ॥ २ ॥

अथात एकधनावरोधनं
यदेकधनमभिध्यायात्पौर्णमास्यां वामावास्यां वा
शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रेऽग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य
परिस्तीर्य पर्युक्ष पूर्वदक्षिणं जान्वाच्य स्रुवेण वा
चमसेन वा कंसेन वैता आज्याहुतीर्जुहोति
वाङ्नामदेवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै
स्वाहा चक्षुर्नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै
स्वाहा श्रोत्रं नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां तस्यै
स्वाहा मनो नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्द्धां
तस्यै स्वाहैत्यथ धूमगन्धं प्रजिघायाज्यलेपेनाङ्गान्यनुविमृज्य
वाचंयमोऽभिप्रवृज्यार्थं ब्रवीत दूतं वा प्रहिणुयाल्लभते हैव ॥ ३॥

अब एकमात्र धन (प्राण ) के निरोधकी बात बतायी जाती है। यदि एकमात्र धनका (अथवा प्राणका ) चिन्तन करे तो पूर्णिमा को या

अमावास्या को अथवा शुक्ल या कृष्णपक्ष की किसी भी पुण्य-तिथि को पवित्र नक्षत्र में अग्नि की स्थापना, परिसमूहन, कुशों का आस्तरण, मन्त्रपूत जलसे अग्नि-वेदी आदिका अभिषेक तथा अग्निपर रक्खे हुए पात्रस्थ घृत का उत्पवन करके दाहिना घुटना पृथ्वी पर टेककर स्रुवा से, चमस से अथवा काँसे की करछुल आदि से निम्नाङ्कित मन्त्र द्वारा घृत की ये आहुतियाँ दे 'वाड् नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मात् । इदम् अवरुन्धा तस्यै स्वाहा ।' अर्थात् 'वाक्' नामसे प्रसिद्ध देवी अवरोधिनी– उपासककी अभीष्टसिद्धि करनेवाली है, वह मुझ प्राणोपासकके लिये अमुक व्यक्तिसे इस अभीष्ट अर्थकी सिद्धि कराये, उसके लिये यह घृत की आहुति सादर समर्पित है ।'प्राणो नाम देवतावरोधिनी सी मेऽमुष्मात् इदम् अवरुन्धा तस्यै स्वाहा।' 'चक्षुर्नाम देवतविरोधिनी सा मेऽमुष्मात् इदम् अवन्ध तस्यै स्वाहा ।' 'औन्त्रं नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मात् इदम् । अवरुधां तस्यै स्वाहा ।' 'मनो नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मात् इदम् अवरुधां तस्यै स्वाहा ।' 'प्रज्ञा नाम देवतावरोधिनी सा मेऽमुष्मात् इदम् अवरुन्धा तस्यै स्वाहा।' इस प्रकार आहुतियाँ देने के पश्चात् धूमगन्ध को सूँघकर होमावशिष्ट घृत के लेप से अपने अङ्ग का अनुमार्जन (लेपन) करके मौनभाव से धनस्वामी के पास जाय और अभीष्ट अर्थ के विषय में कहे कि इतने धन की मुझे आवश्यकता है, सो आपके यहाँ से मिल जाना चाहिये ।' अथवा यदि घनस्वामी दूर हो तो उक्त सन्देश कहलाने के लिये उसके पास दूत भेज दे । यों करने से निश्चय ही वह अभीष्ट धन प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

अथातो दैवस्मरो यस्य प्रियो बुभूषेयस्यै वा एषां
वैतेषमेवैतस्मिन्पर्वण्यग्निमुपसमाधायैतयैवावृतैता
जुहोम्यसौ स्वाहा चक्षुस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा प्रज्ञानं ते
मयि जुहोम्यसौ स्वाहेत्यथ धूमगन्धं
प्रजिघायाज्यलेपेनाङ्गान्यनुविमृज्य वाचंयमोऽभिप्रवृज्य
संस्पर्शं जिगमिषेदपि वाताद्वा सम्भाषमाणस्तिष्ठेत्प्रियो हैव भवति
स्मरन्ति हैवास्य ॥४॥

अब इसके बाद वाक् आदि देवताओं द्वारा साध्य मनोरथ की सिद्धि का प्रकार बताया जाता है। जिस किसी का प्रिय होना चाहे, निश्चय ही उन सबका प्रिय होने के लिये पहले प्राणोपासक को वाक् आदि देवताओं का ही प्रिय बनना चाहिये । किसी एक पर्व के दिन पूर्वोक्त रीति से शुभ पुण्यतिथि एवं मुहूर्त में पहले बताये अनुसार ही अग्नि की स्थापना, परिसमूहन, कुशों का आस्तरण, अग्निवेदी आदि का अभिषेक, घृत को उत्पवन आदि करके निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे ये घृतकी आहुतियाँ दे, 'पाच ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा ।'- मैं तुम्हारी वाक् इन्द्रिय का अपने में हवन करता हूँ, मेरा अमुक कार्य सिद्ध हो जाय– इस उद्देश्यसे यह आहुति है। इसी प्रकार- 'प्राणं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । चक्षुस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । श्रोत्रं ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । मनस्ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा । प्रज्ञा ते मयि जुहोम्यसौ स्वाहा ।' इसके बाद होम धूम की गन्ध सँधकर होमावशिष्ट घृत के लेप से अपने अङ्ग का अनुमार्जन (लेपन) करके मौनभाव से अभीष्ट व्यक्ति के पास गमन करे और उसके संपर्क में जाने की इच्छा करे । अथवा ऐसी जगह खड़ा रहकर वार्तालाप करे, जहाँ वायु की सहायताले उसके शब्द अभीष्ट व्यकि के कान में पड़ें । फिर तो निश्चय ही वह

उसका प्रिय हो जाता है। इतना ही नहीं, उस स्थान से हट जाने पर वहाँ के लोग उसको सदा स्मरण करते हैं ॥ ४ ॥

अथातः सायमन्नं प्रातर्दनमम्तरमग्निहोत्रमित्याचक्षते
यावद्वै पुरुषो भासते न तावत्प्राणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि
जुहोति यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्भाषितुं शक्नोति वाचं
तदा प्राणे जुहोत्येतेऽनन्तेऽमृताहुतिर्जाग्रच्च स्वपंश्च
सन्ततमवच्छिन्नं जुहोत्यथ या अन्या आहुतयोऽन्तवत्यस्ताः
कर्ममय्योभवन्त्येतद्ध वै पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं
जुहवांचक्रुः॥ ५॥

अब इसके बाद दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन द्वारा अनुष्ठित, अतएव 'प्रातर्दन' नामसे विख्यात और सयम से पूर्ण होनेसे 'सायमन' कहलाने वाले आध्यात्मिक अग्निहोत्र का वर्णन करते हैं । निश्चय ही मनुष्य जब तक कोई वाक्य बोलता है, तब तक पूर्णतया श्वास नहीं ले सकता । उस समय वह प्राण का वाणी रूप अग्नि में हवन कर देता है। जब तक पुरुष श्वास खींचता है, तब तक बोल नहीं सकता, उस समय वह वाणी का प्राणरूप अग्नि में हवन कर देता है । ये वाक् और प्राणरूप दो आहुतियाँ अनन्त एव अमृत हैं । जाग्रत् और स्वप्नकाल में भी पुरुष सदा अविच्छिन्नरूप से इन आहुतियों का होम करता रहता है । इसके सिवा अर्थात् वाक्-प्राणरूपा आहुतियों के अतिरिक्त जो दूसरी द्रव्यमयी आहुतियाँ हैं, वे कर्ममयी हैं। यह प्रसिद्ध है कि इस रहस्य को जानने वाले पूर्ववर्ती विद्वान् केवल कर्ममय अग्निहोत्र का अनुष्ठान नहीं करते थे ॥ ५ ॥

उक्थं ब्रह्मेति ह स्माह शुष्कभृङ्गारस्तद्दगित्युपासीत
सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्यायाभ्यर्च्यन्ते
तद्यजुरित्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रैष्ठ्याय
युज्यन्ते तत्सामेत्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि
श्रैष्ठ्याय सन्नमन्ते तच्छ्रीत्युपासीत तद्यश
इत्युपासीत तत्तेज इत्युपासीत तद्यथैतच्छा स्त्राणां
श्रीमत्तमं यशस्वितमं तेजस्वितमं भवति तथो एवैवं
विद्वान्सर्वेषां भूतानां श्रीमत्तमो यशस्वितमस्तेजस्वितमो
भवति तमेतमैष्टकं कर्ममयमात्मानमध्वर्युः संस्करोति
तस्मिन्यजुर्भयं प्रवयति यजुर्मयं ऋङ्मयं होता ऋङ्मयं
साममयमुद्गाता स एष सर्वस्यै त्रयीविद्याया आत्मैष उत
एवास्यात्यैतदात्मा भवति एवं वेद ॥ ६॥

'उक्थ ( प्राण) ब्रह्म है।' यह बात सुप्रसिद्ध महात्मा शुष्कभृङ्गार कहते हैं। वह उक्थ ऋक् है, इस वुद्धि से उपासना करे। जो प्राणरूप उक्थ में ऋग्बुद्धि कर लेता है। उसकी सम्पूर्ण प्राणी श्रेष्ठता के लिये श्रेष्ठ बनने के लिये अर्चना करते हैं। वह उक्थ यजुर्वेद है, इस बुद्धि से उपासना करे । इससे सम्पूर्ण प्राणी श्रेष्ठता के लिये उसके साथ सहयोग करते हैं। वह उक्थ 'साम' है। इस बुद्धि से उपासना करे । उस उपासक के समक्ष सम्पूर्ण प्राणी श्रेष्ठता के लिये मस्तक झुकाते हैं। वह उक्थ 'श्री' है, इस बुद्धि से उपासना करे । वह यश' है, इस भाव से उपासना करे । वह तेज है, इस भाव से उपासना करें । इस विषय में यह दृष्टान्त है, जैसे यह दिव्य धनुष सम्पूर्ण आयुधों में अत्यन्त श्रीसम्पन्न, परम यशस्वी और परम तेजस्वी होता है, उसी प्रकार जो

इस प्रकार जानता है वह विद्वान् सम्पूर्ण भूतों में सबसे अधिक श्रीसम्पन्न, परम यशस्वी तथा परम तेजस्वी होता है। इस प्राण को तथा ईंटों की वेदीपर संचित कर्ममय अग्नि को भी अभिन्न एवं आत्मस्वरूप मानकर अध्र्व्यु नामक ऋत्विक् अपना सस्कार करता है। उस प्राण में ही वह यजुर्वेदसाध्य कर्मो का विस्तार करता है। यजुर्वेदसाध्य कर्म-वितान में होता ऋग्वेदसाध्य कर्मों का विस्तार करता है। ऋग्वेदसाध्य कर्म-वितान में उद्गाता सामवेदसाध्य कर्मों का विस्तार करता है। वह अध्वर्युरूप यह प्राण सम्पूर्ण त्रयी-विद्या का आत्मा है । यह प्रत्यक्षगोचर प्राण ही इस त्रयी-विद्या का आत्मा बताया गया है। जो इस प्राण को इस रूप में जानता है, वह भी प्राणरूप हो जाता है ॥ ६ ॥

अथातः सर्वजितः कौषीतकेस्त्रीण्युपासनानि भवन्ति
यज्ञोपवीतं कृत्वाप आचम्य त्रिरुदपात्रं
प्रसिच्योद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठेत वर्गोऽसि पाप्मानं मे
वृङ्धीत्येतयैवावृता मध्ये सन्तमुद्वर्गोऽसि पाप्मानं म
उद्धृङ्धीत्येतयैवावृतास्ते यन्तं संवर्गोऽसि पाप्मानं
मे संवृङ्धीति यदहोरात्राभ्यां पापं करोति
सन्तद्धृङ्क्ते ॥ ७॥

अब सर्वविजयी कौषीतकि के द्वारा अनुभव में लायी हुई तीन बार की जाने वाली उपासना बतायी जाती है। यज्ञोपवीत को सव्यभाव से बायें कधे पर रखकर, आचमन करके जलपात्र को तीन बार शुद्ध-स्वच्छ जल से पूर्णतः भरकर उदयकाल में भगवान् सूर्य को उपस्थान करे,

उनकी आराधना के लिये खड़ा होकर अर्घ्य दे(अर्घ्य देते समय इस मन्त्रका उच्चारण करे-) 'वर्गोऽसि पाप्मान मे वृडधि ।'- आत्मज्ञान होनेके कारण सम्पूर्ण जगत्को आप तृणकी भाँति त्याग देते हैं, इसलिये वर्ग' कहलाते हैं; मेरे पापको मुझसे दूर कीजिये । इसी प्रकार मध्याह्नकाल में भी भगवान् सूर्य का उपस्थान करे । 'उद्वर्गोऽसि पाप्मान में उद्वृधि । फिर इसी प्रकार सायंकालमै अस्त होते हुए भगवान् सूर्य का उपस्थान करे 'संवर्गोऽसि पाप्मानं मे सवृधि ।' इस उपासना का फल यह है कि मनुष्य दिन और रात में जो पाप करता है, उसका पूर्णतः परित्याग कर देता है ॥ ७ ॥

अथ मासि मास्यमावास्यायां पश्चाच्चन्द्रमसं
दृश्यमानमुपतिष्ठेतैवावृता हरिततृणाभ्यामथ वाक्
प्रत्यस्यति यत्ते सुसीमं हृदयमधिचन्द्रमसि श्रितम् ॥

तेनामृतत्वस्येशानं माहं पौत्रमघं रुदमिति न
हास्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रयन्तीति न जातपुत्रस्याथाजातपुत्रस्याह ॥
आप्यास्व समेतु ते सन्ते पयांसि समुयन्तु वाजा यमादित्या
अंशुमाप्याययन्तीत्येतास्तिस्र ऋचो जपित्वा नास्माकं प्राणेन
प्रजया पशुभिराप्यस्वेति दैवीमावृतमावर्त
आदित्यस्यावृतमन्वावर्तयति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते ॥ ८॥

अब दूसरी उपासना बतायी जाती है। प्रत्येक मास की अमावास्या तिथि को, जब सूर्य के पश्चिम भाग में उनकी सुषुम्णा नामक किरण में चन्द्रमा स्थित दिखायी देते हैं , उस समय उनका पूर्वोक्त प्रकार से ही उपस्थान करे । विशेषता इतनी ही है कि अर्ध्वपात्र में दो हरी

दूब के अंकुर भी रख ले और उससे अर्घ्य देते हुए चन्द्रमा के प्रति 'यत्ते' इत्यादि मन्त्ररूपा वाणी का प्रयोग करे ।- यत्ते सुसीमं हृदयमधि चन्द्रमसि श्रितं तेनामृतत्वस्यैशानं माहं पौत्रमघ दम् । 'हे सोममण्डल की अधिष्ठात्री देवि ! जिसकी सीमा बहुत ही सुन्दर है, ऐसा जो तुम्हारा हृदय- हृदयस्थित आनन्दमय स्वरूप चन्द्रमण्डल में विराजित है, उसके द्वारा तुम अमृतत्व पर भी अधिकार रखती हो। ऐसी कृपा करो, जिससे मुझे पुत्र के शोक से न रोना पड़े।' यों करने वाले उपासक को यदि पुत्र प्राप्त हो चुका हो तो उसके उस पुत्र की उससे पहले मृत्यु नहीं होती । यदि उसके कोई पुत्र न हुआ हो, तो वह भी पहले की ही भाँति सब कार्य करके अर्घ्यपात्र में दो हरी दूब के अंकुर भी रख ले और निम्नाङ्कित ऋचाओं का जप करे- 'समेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यं भवा वाजस्य संगथे ।' 'सं ते पयोसि समु यन्तु वाजा संवृष्ण्यान्यभिमातिषाह.। आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवस्युत्तमानि धिष्व ।' 'यमादित्या अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षितयः पिबन्ति । तेन नौ राजा वरुणो बृहस्पतिरप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ।' इन तीन ऋचाओंका जप करने के पश्चात् चन्द्रमा के सम्मुख दाहिना हाथ उठाये और निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे- 'मामाकं प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययिष्ठा योऽस्मान् । द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययस्व इति दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्ते इति ।' -यों कहकर अपनी दाहिनी बाँह को अन्वावर्तन करे- बारबार घुमाये । तत्पश्चात् बाँह खींच ले ॥ ८ ॥

अथ पौर्णमास्यां पुरस्ताच्चन्द्रमसं
दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता सोमो राजासि
विचक्षणः पञ्चमुखोऽसि प्रजापतिर्ब्राह्मणस्त एकं मुखं
तेन मुखेन राज्ञोऽत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु ॥ राजा
त एकं मुखं तेन मुखेन विशोत्सि तेनैव मुखेन मामन्नादं
कुरु ॥ श्येनस्त एकं मुखं तेन मुखेन पक्षिणोऽत्सि तेन
मुखेन मामन्नादं कुरु ॥ अग्निस्त एकं मुखं तेन मुखेनेमं
लोकमत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु ॥ सर्वाणि भूतानीत्येव
पञ्चमं मुखं तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यत्सि तेन मुखेन
मामन्नादं कुरु ॥ मास्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षेष्ठा योऽस्माद्वेष्टि
यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षीयस्वेति
स्थितिर्दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्तन्त इति
दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते ॥ ९॥

अब अन्य प्रकार की उपासना बतायी जाती है- पूर्णिमा को सायंकाल में जब प्राची दिशा के अङ्कमें चन्द्रदेव का दर्शन होने लगे, उस समय इसी रीति से ( जो पहले बतायी गयी है) चन्द्रमाका उपस्थान करे- उन्हें अर्घ्य प्रदान करे । उपस्थानके समय निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ भी करे- 'सोमो राजासि विचक्षणः पञ्चमुखोऽसि प्रजापति ब्रह्मणस्त एकं मुखं तेन मुखेन राज्ञोऽसि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु । राजा त एकं मुखं तेन मुखेन विशोऽत्सी तेन मुखेन मामन्नादं कुरु । श्येनस्त एकं मुखं तेन मुखेन पक्षिणोऽत्सी तेन मुखेन मामन्नादं कुरु । अग्निष्ट एक मुखं तेन मुखेनेमं लोकमत्सी तेन मुखेन मामन्नादं कुरु । त्वयि पञ्चमं मुख तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यत्सि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु । मास्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षेष्ठा योऽस्मान् देष्टि ये च चयं

द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षीयस्वेति, दैवीमावृतमावर्त, आदित्यस्यावृतमन्वावर्ते ।' इस प्रकार मन्त्रपाठ करते हुए दाहिनी बाँहका अन्वावर्तन करे ॥ ९ ॥

अथ संवेश्यन्जायायै हृदयमभिमृशेत् ॥ यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ ॥ मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघं रुदमिति न हास्मत्पूर्वाः प्रजाः प्रैति ॥१०॥

इस तरह सोमकी प्रार्थनाके पश्चात् ( गर्भाधान के लिये ) पत्नीके समीप बैठनेसे पूर्व उसके हृदय का स्पर्श करे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र का पाठ करना चाहिये- 'यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्त प्रजापतौ । मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं तेन माहं पौत्रमवं रुदम् । 'हे सुन्दर सीमन्त वाली सुन्दरी । तुम सोममयी हो, तुम्हारा हृदय (स्तन-मण्डल ) प्रजा संततिका पालक ( पोषक ) है; उसके भीतर जो चन्द्रमण्डलकी ही भाँति अमृतराशि निहित है, उसे मैं जानता हूँ, अपने को उसका जानने वाला मानता हूँ । इस सत्य के प्रभाव से में कभी पुत्रसम्बन्धी शोक से रोदन न करूँ । इस प्रकार प्रार्थना करने से उस उपासक के पहले उसकी संतान की मृत्यु नहीं होती ॥ १० ॥

अथ प्रोष्यान्पुत्रस्य मूर्धानमभिमृशति ॥

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ असाविति नामास्य गृह्णाति । अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं

भव । तेजो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ असाविति नामासि गृह्णाति। येन प्रजापतिः प्रजाः पर्यगृह्णीतारिष्ट्यै तेन त्वा परिगृह्णाम्यसावित्यथास्य दक्षिणे कर्णे जपति ॥ अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्नितीन्द्रश्रेष्ठानि द्रविणानि धेहीति माच्छेत्ता मा व्यथिष्ठाः शतं शरद आयुषो जीव पुत्र । ते नाम्ना मूर्धानमभिजिघ्राम्यसाविति त्रिरस्य मूर्धानमभिजिघ्रेद्भवा त्वा हिङ्कारेणाभिहिङ्करोमीति त्रिरस्य मूर्धानमभिहिङ्कुर्यात् ॥ ११॥

अब दूसरी उपासना बतायी जाती है- परदेश में रहकर वहाँ से लौटा हुआ पुरुष पुत्र के मस्तक का स्पर्श करे और इस मन्त्र को पढ़े- 'पुत्र ! तुम नरकसे तारने वाले हो । मेरे अङ्ग अङ्गसे प्रकट हुए हो । मेरे हृदयसे तुम्हारा आविर्भाव हुआ है। तुम मेरे अपने ही स्वरूप हो। तुमने मेरी (नरकसे ) रक्षा की है। तुम सौ वर्षोंतक जीवित रहो ।' 'वत्स ! तुम पत्थर बनो, कुठार बनो और विछा हुआ सुवर्ण बनो। अर्थात् तुम्हारा शरीर पत्थरके समान सुगठित, बलवान, स्वस्थ एव नीरोग हो। तुम कुठारकी भाँति शत्रुओं का नाश करनेवाले बनो और सब ओर फैली हुई सुवर्णराशिकी भाँति सबके प्रिय बनो। समस्त अंगों का सारभूत, ससार-वृक्ष का बीजरूप जो तेज है, वह तुम्हीं हो, तुम सैकड़ों वर्ष जीवित रहो ।' 'वत्स ! प्रजापति ब्रह्माजी अपनी सृष्टिको विनाशसे बचानेके लिये उसे जिस तेजमे सन्पन्न करके परिगृहीत अथवा अनुगृहीत करते हैं, उसी तेजसे सम्पन्न करके मैं तुम्हें सब ओरसे ग्रहण करता हूँ।' तत्पश्चात् पुत्रके दाहिने कान में इस मन्त्रका जप करे 'मघवन् ! आप सरल भावको अवलम्बन करके इस पुत्रकी । रक्षा करें । इद्र ! इसे श्रेष्ठ धन प्रदान करें।' फिर इसी मन्त्रको बायें कान में भी जपे । तनदनन्तर पुत्र का मस्तक सूँघे और इस मन्त्र

को पढ़े 'बेटा ! सतान-परम्परा का उच्छेद न करना । मन, वाणी और शरीरसे तुम्हें कभी पीड़ा न हो। तुम सौ वर्षों तक । जीवित रहो । मैं तुम्हारा अमुक नामसे प्रसिद्ध पिता तुम्हारा नाम लेकर तुम्हारे मस्तकको सँध रहा हूँ।' (यहाँ 'असौ के स्थानपर पिता अपना नाम ले।) इस मन्त्रको पढ़कर तीन बार पुत्रका मस्तक सूँघना चाहिये । इसके बाद नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर मस्तकके सत्र और तीन बार हिंकार ( 'हिम्' । शब्दका ) उच्चारण करे । मन्त्र इस प्रकार है- 'वत्स ! गौएँ अपने बछड़ेको बुलानेके लिये जैसे रंभाती हैं, उसी प्रकार वैसे ही प्रेमसे मैं भी तुम्हारे लिये हिङ्कार करता हूँ-हिङ्कारद्वारा तुम्हें अपने पास बुलाता हूँ ॥ ११ ॥

अथातो दैवः परिमर एतद्वै ब्रह्म दीप्यते
यदग्निर्ज्वलत्यथैतन्म्रियते यन्न ज्वलति तस्यादित्यमेव तेजो गच्छति
वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यथादित्यो दृश्यतेऽथैतन्म्रियते यन्न
दृश्यते तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते
यच्चन्द्रमा दृश्यतेऽथैतन्म्रियते यन्न दृश्यते तस्य
विद्युतमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते
यद्विद्युद्विद्योततेऽथैतन्म्रियते यन्न विद्योतते तस्य वायुमेव तेजो
गच्छति वायुं प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवता वायुमेव प्रविश्य वायौ
सृप्ता न मूर्च्छन्ते तस्मादेव पुनरुदीरत इत्यधिदैवतमथाध्यात्मम्
॥१२॥

अत्र इसके बाद देव-सम्बन्धी 'परिमर' का वर्णन किया जाता है । ( यहाँ अग्नि और वाक आदि ही देवता हैं, ये देवता प्राण के सब ओर मृत्युको प्राप्त होते हैं, अतः ब्रह्मस्वरूप प्राणको ही यहाँ 'परिमर' कहा गया है।) यह जो प्रत्यक्ष रूपमें अग्नि प्रचलित है। इस रूपमें ब्रह्म ही

देदीप्यमान हो रहा है। जब अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, उस अवस्थामें यह मर जाती है बुझ जाती है । उस बुझी हुई अग्निका तेज सूर्यमे ही मिल जाता है और प्राण वायुमें प्रवेश कर जाता है। यह जो सूर्य दृष्टिगोचर होता है, निश्चय ही इस रूपमें ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है। जब यह नहीं दिखायी देता, तब मानो मर जाता है । उस समय उसका तेज चन्द्रमाको ही प्राप्त होता और प्राण वायुमें मिल जाता है। यह जो चन्द्रमा दिखायी देता है, निश्चय ही इसके रूपमें ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है । फिर जब यह नहीं दिखायी देता, तब भानो यह मर जाता है, उस समय उसका तेज विद्युत् को ही और ऋण वायुको प्राप्त हो जाता है। यह जो बिजली कौंधती है, निश्चय ही इसके रूपमें यह ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है। फिर जब यह नहीं कौंधती, तब मानो मर जाती है; उस समय उसकी तेज वायु को प्राप्त होता है और प्राण भी वायुमें ही प्रवेश कर जाता है। वे प्रसिद्ध अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा तथा विद्युत्-स्वरूप सम्पूर्ण देवता वायुमें ही प्रवेश करके स्थित होते हैं । वायु (आधिदैविक प्राण ) में विलीन होकर वे विनष्ट नहीं होते; क्योंकि पुनः उस वायुसे ही उनका प्रादुर्भाव होता है । इस प्रकार आधिदैविक दृष्टि है ! अब आध्यात्मिक दृष्टि बतायी जाती है ॥ १२ ॥

एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यद्वाचा वदत्यथैतन्म्रियते यन्न वलति
तस्य चक्षुरेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म
दीप्यते यच्चक्षुषा पश्यत्यथैतन्म्रियते यन्न पश्यति तस्य
श्रोत्रमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यच्छोत्रेण
शृणोत्यथैतन्म्रियते यन्न शृणोति तस्य मन एव तेजो
गच्छति प्राणं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा

ध्यायत्यथैतन्म्रियते यन्न ध्यायति तस्य प्राणमेव तेजो गच्छति प्राणं
प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवताः प्राणमेव प्रविश्य प्राणे सृप्ता न
मूर्छन्ते तस्माद्धैव पुनरुदीरते तद्यदिह वा एवंविद्वांस उभौ
पर्वतावभिप्रवर्तेयातां तुस्तूर्षमाणो दक्षिणश्चोत्तरश्च
न हैवैनं स्तृण्वीयातामथ य एनं द्विषन्ति यांश्च
स्वयं द्वेष्टि त एवं सर्वे परितो म्रियन्ते ॥ १३॥

मनुष्य वाणी से जो बातचीत करता है, यह मानो ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है। जब यह नहीं बोलता, उस समय मानो यह वाक्-इन्द्रिय मर जाती है। उस समय वाणीका तेज नेत्रको प्राप्त हो जाता है और प्राण प्राणवायु में मिल जाता है। यह मनुष्य नेत्रद्वारा जो देखता है, यह मानो ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है । जब नेत्रसे नहीं देखता, उस समय मानो नेत्रेन्द्रिय मर जाती है। उस समय नेत्रका तेज श्रवणेन्द्रियको प्राप्त हो जाती है तथा प्राण प्राणमें ही मिल जाता है। यह जो श्रवणद्वारा सुनता है, यह मानो ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है, जब यह नहीं सुनता, तब मानो श्रवणेन्द्रिय मर जाती है । उस समय उसका तेज मनको ही प्राप्त हो जाता है और प्राण प्राण में मिल जाता है । यह जो मन से ध्यान ( चिन्तन ) करता है। यह मानो ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है । जब चिन्तन नहीं करत, तब मानो मन मर जाता है। उस समय उसका तेज प्राणको ही प्राप्त हो जाता है और प्राण भी प्राणमें ही मिल जाता है । इस प्रकार ये सम्पूर्ण वाक् आदि देवता प्राणमें ही प्रवेश करके स्थित होते हैं । प्राणमें लीन होकर वे नष्ट नहीं होते हैं अतएव पुनः प्राणसे ही उनका प्रादुर्भाव होता है। उस दैव परिमर (प्राण ) को सम्यग्ज्ञान हो जानेपर यदि वे ज्ञानी पुरुष ऐसे दो ऊँचे पर्वतों को जो भूमण्डल के उत्तरी सिरे से लेकर दक्षिणी सिरेतक फैले हों; अपनी

इच्छाके अनुसार चलनेको प्रेरित करें तो वे पर्चत इन ज्ञानी महापुरुषों की- हिंसा- उनकी आज्ञाका परित्याग अर्थात् उनकी अवहेलना नहीं कर सकते । इसके सिवा, जो लोग इस 'दैवपरिमर' के ज्ञाता पुरुषसे द्वेष करते हैं, अथवा वह स्वयं जिन लोगोंसे द्वेष रखता हो, सब-के-सब सर्वथा नष्ट हो जाते है ॥ १३ ॥

अथातो निःश्रेयसादानं एता ह वै देवता अहं श्रेयसे
विवदमाना अस्माच्छरीरादुच्चक्रमुस्तद्दारुभूतं
शिष्येथैतद्वाक्प्रविवेश तद्वाचा वदच्छिष्य
एवाथैतच्चक्षुः प्रविवेश तद्वाचा वदच्चक्षुषा
पश्यच्छिष्य एवाथैतच्छ्रोत्रं प्रविवेश तद्वाचा
वदच्चक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शृण्वन्मनसा
ध्यायच्छिष्य एवाथैतत्प्राणः प्रविवेश तत्तत एव
समुत्तस्थौ तद्देवाः प्राणे निःश्रेयसं विचिन्त्य प्राणमेव
प्रज्ञात्मानमभिसंस्तूय सहैतैः सर्वैरस्माल्लोकादुच्चक्रमुस्ते
वायुप्रतिष्ठाकाशात्मानः स्वर्ययुस्तहो एवैवंविद्वान्सर्वेषां भूतानां
प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंस्तूय सहैतैः सर्वैरस्माच्छरीरादुत्क्रामति स
वायुप्रतिष्ठाकाशात्मा न स्वरेति तद्भवति यत्रैतद्देवास्तत्प्राप्य तदमृतो
भवति यदमृता देवाः ॥ १४॥

इसके पश्चात् अब मोक्ष-साधन के गुण से विशिष्ट सर्वश्रेष्ठ प्राण की उपासना बतायी जाती है। एक समय वाक् आदि। सम्पूर्ण देवता अहङ्कारवश अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये विवाद करने लगे । वे सब प्राण के साथ ही इस शरीरसे निकल गये । उनके निकल जानेपर वह शरीर काठ की भाँति निश्चेष्ट होकर सो गया । तदनन्तर उस शरीर में वाक् इन्द्रियने प्रवेश किया । तब वह वाणीसे बोलने तो लगा, परन्तु उठ न सका, सोया ही रह गया । तत्पश्चात् चक्षु-इन्द्रियने

उस शरीर में प्रवेश किया । तथापि वह वाणीसे बोलता और नेत्रसे देखता हुआ भी सोता ही रहा, उठ न सका । तब उस शरीर में श्रवण-इन्द्रियने प्रवेश किया । उस समय भी वह वाणीसे बोलता, नेत्रसे देखता और कानों से सुनता हुआ भी सोता ही रहा, उठकर बैठ ने सका । तदनन्तर उस शरीरमे मन ने प्रवेश किया । तब भी वह शरीर वाणीसे बोलता, नेत्र से देखता, कानसे सुनता और मनसे चिन्तन करता हुआ भी पड़ा ही रहा। तत्पश्चात् प्राणने उस शरीरमें प्रवेश किया। फिर तो उसके प्रवेश करते ही वह शरीर उठ बैठा । तब उन वाक् आदि देवताओंने प्राणमें ही मोक्ष-साधनकी शक्ति जानकर तथा प्रज्ञास्वरूप प्राणको ही सब ओर व्याप्त समझकर इन प्राण अपान आदि समस्त प्राणों के साथ ही इस शरीररूप लोकसे उक्रमण किया । वे वायुमें-आधिदैविक प्राणमें स्थित हो आकाशस्वरूप होकर स्वर्गलोकमें गये-अपने अधिष्ठातृ-देवता अग्नि आदिके स्वरूपको प्राप्त हो गये । उसी प्रकार इस रहस्यको जाननेवाला विद्वान् सम्पूर्ण भूतों के प्राणको ही प्रज्ञात्मारूपसे प्राप्तकर इन प्राण-अपान आदि समस्त प्राणोंके साथ इस शरीरसे उत्क्रमण करता है । तथा वह वायु में प्रतिष्ठित हो आकाशस्वरूप होकर स्वर्गलोक को गमन करता है । वह विद्वान् वहाँ उस सुप्रसिद्ध प्राण का स्वरूप हो जाता है जिसमें कि ये वाक् आदि देवता स्थित होते हैं । उस प्राणस्वरूप को प्राप्तकर वह विद्वान् प्राणके उस अमृतत्व-गुणसे युक्त हो जाता है, जिस अमृतत्व-गुणसे वे वाक् आदि देवता भी संयुक्त होते हैं ॥ १४ ॥

अथातः पितापुत्रीयं सम्प्रदानमिति चाचक्षते पिता पुत्रं प्रष्याह्वयति नवैस्तृणैरगारं संस्तीर्याग्निमुपसमाधायोदकुम्भं सपात्रमुपनिधायाहतेन वाससा सम्प्रच्छन्नः श्येत एत्य पुत्र उपरिष्टदभिनिपद्यत इन्द्रियैरस्येन्द्रियाणि संस्पृश्यापि वास्याभिमुखत एवासीताथास्मै सम्प्रयच्छति वाचं मे त्वयि दधानीति पिता

वाचं ते मयि दध इति पुत्रः प्राणं मे त्वयि दधानीति पिता
प्राणं ते मयि दध इति पुत्रश्चक्षुर्मे त्वयि दधानीति पिता
चक्षुस्ते मयि दध इति पुत्रः श्रोत्रं मे त्वयि दधानीति पिता
श्रोत्रं ते मयि दध इति पुत्रो मनो मे त्वयि दधानीति पिता
मनस्ते मयि दध इति पुत्रोऽन्नरसान्मे त्वयि दधानीति
पितान्नरसांस्ते मयि दध इति पुत्रः कर्माणि मे त्वयि
दधानीति पिता कर्माणि ते मयि दध इति पुत्रः सुखदुःखे मे
त्वयि दधानीति पिता सुखदुःखे ते मयि दध इति पुत्र आनन्दं
रतिं प्रजाइं मे त्वयि दधानीति पिता आनन्दं रतिं प्रजातिं
ते मयि दध इति पुत्र इत्यां मे त्वयि दधानीति पिता इत्यां ते मयि
दध इति पुत्रो धियो विज्ञातव्यं कामान्मे त्वयि दधानीति
पिउता धियो विज्ञातव्यं कामांस्ते मयि दध इति पुत्रोऽथ
दक्षिणावृदुपनिष्क्रामति तं पितानुमन्त्रयते यशो
ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यं कीर्तिस्त्वा जुषतामित्यथेतरः
सव्यमंसमन्ववेक्षते पाणि नान्तर्धाय वसनान्तेन वा
प्रच्छद्य स्वर्गाल्लोकान्कामानवाप्नुहीति स यद्यगदः
स्यात्पुत्रस्यैश्वर्ये पिता वसेत्परिवा व्रजेद्ययुर्वै
प्रेयाद्यदेवैनं समापयति तथा समापयितव्यो भवति तथा
समापयितव्यो भवति ॥ १५॥

अब इसके पश्चात् पिता-पुत्रका सम्प्रदान-कर्म बतलाते हैं (पिता पुत्रको अपनी जीवन-शक्ति प्रदान करता है; अतएव इसको पितापुत्रीय सम्प्रदान-कर्म कहते हैं)। पिता यह निश्चय करके कि अब मुझे इस लोकसे प्रयाण करना है, पुत्रको अपने समीप बुलाये । नूतन कुश-कास आदि तृणसे अग्निशालाको आच्छादित करके विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करे । अग्निके उत्तर या पूर्वभागमें जलसे भरा हुआ

कलश स्थापित करे । कलशके ऊपर धान्यसे भरा हुआ पात्र भी होना चाहिये । स्वयं भी नवीन धौत (धोती) और उत्तरीय धारण करे । इस प्रकार श्वेत वस्त्र और माला आदि से अलंकृत हो घरमें आकर पुत्रको पुकारे । जब पुत्र समीप आ जाय तो सब ओरसे,उसके ऊपर पड़ जाय अर्थात् उसे अङ्कमें भर ले और अपनी इन्द्रियोंसे उसकी इन्द्रियोंका स्पर्श करे (तात्पर्य यह कि नेत्रसे नेत्रका, नाकसे नाकका तथा अन्य इन्द्रियों से उसकी अन्य इन्द्रियाका स्पर्श करे )। अथवा केवल पुत्रके सम्मुख बैठ जाय और उसे अपनी वाक-इन्द्रिय आदिका दान करे । पिता कहे-'मैं तुममें अपनी वाक्-न्द्रिय स्थापित करता हूँ।' पुत्र उत्तर दे- 'पिताजी ! मैं आपकी वाक्-इन्द्रियको अपनेमें धारण करता हूँ।' पिता-'मैं अपने प्राणको तुममें स्थापित करता हूँ।' पुत्र- 'आपके प्राण को अपनेमें धारण करता हूँ।' पिता- 'अपनी चक्षु-इन्द्रियको तुममें स्थापित करता हूँ।' पुत्र- 'आपके चक्षुको अपने धारण करता हूँ।' पिता- 'अपने क्षेत्रको तुममें स्थापित करता हूँ।' पुत्र- 'आपके श्रोत्र को अपनेमें धारण करता हूँ।' पिता- 'अपने अन्नके रसको तुममें स्थापित करता हूँ ।' पुत्र- 'आपके अन्नरसको अपनेमें धारण करता हूँ ।' पिता- 'अपने कमको तुममें स्थापित करता हूँ ।' पुत्र- 'आपके कर्मीको अपनेमें धारण करता हूँ।' पिता-'अपने सुख और दुःखको तुममें स्थापित करता हूँ।' पुत्र- 'आपके सुख और दुःखको अपने में धारण करता हूँ ।' पिता- 'मैथुन-जनित आनन्द, रति और सन्तानोत्पचिकी शक्ति तुममें स्थापित करता हूँ ।' पुत्र- 'आपकी वह शक्ति में अपनेमे धारण करता हूँ ।' पिता-'अपनी गतिशक्ति मैं तुममें स्थापित करता हूँ ।' पुत्र-'आपकी गतिशक्ति अपने मैं धारण करता हूँ ।' पिता–'अपनी बुद्धि-वृत्तिर्योको,

बुद्धिके द्वारा ज्ञातव्य विपयको तथा विशेष कामनाओंको तुममें स्थापित करता हूँ।' पुत्र-'आपकी बुद्धि-वृत्तियों को, बुद्धिके द्वारा ज्ञातव्य विषयों को तथा कामनाओंको मैं अपनेमें धारण करता हूँ।' तदनन्तर पुत्र पिता की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशाकी ओर पिताके समीपसे निकलता है । उस समय पिता पीछेसे पुत्रको सम्बोधित करके कहते हैं, 'यश, ब्रह्मतेज, अन्नको खाने और पचानेकी शक्ति तथा उत्तम कीर्ति—ये समस्त सद्गुण तुम्हारा सेवन करें ।' पिताके यों कहनेपर पुत्र अपने बायें कन्धे की ओर दृष्टि घुमाकर देखे और हाथ से ओट करके अथवा कपड़ेसे आड़ करके पिताको उत्तर दे'आप अपनी इच्छाके अनुसार कमनीय स्वर्गलोक तथा वहाँ के भोगको प्राप्त करें ।' इसके बाद यदि पिता नीरोग हो तो वह पुत्रके प्रभुत्वमें ही वहाँ निवास करे अथवा सब कुछ त्यागकर घरसे निकल जाय- सन्यासी हो जाय । अथवा यदि वह परलोकगामी हो जाय तो जिन-जिन वाक् आदि इन्द्रियको उसने पुत्रमें स्थापित किया था, उन सभीकी शक्तिका वह पुत्र उसी प्रकार आश्रय हो जाता है। वे सभी शक्तियाँ उसे प्राप्त होती हैं ( यंही सच्चा उत्तराधिकार है ) ॥ १५ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥

## ॥अथ तृतीयोध्याये॥

## तृतीय अध्याय

प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम युद्धेन
पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वरं ते ददानीति स
होवाच प्रतर्दनस्त्वमेव वृणीश्व यं त्वं मनुष्याय
हिततमं मन्यस इति तं हेन्द्र उवाच न वै वरं परस्मै वृणीते
त्वमेव वृणीश्वेत्यवरो वैतर्हि किल म इति होवाच प्रतर्दनोऽथो
खल्विन्द्रःसत्यादेव नेयाय सत्यं हीन्द्रः स होवाच मामेव
विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीयां त्रिशीर्षाणं
त्वाष्ट्रमहनमवाङ्मुखान्यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छं
बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीनतृणमहमन्तरिक्षे
पौलोमान्पृथिव्यां कालकाश्यांस्तस्य मे तत्र न लोम च
नामीयते स यो मां विजानीयान्नास्य केन च कर्मणा लोको मीयते न
मातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया नास्य पापं च न
चकृषो मुखान्नीलं वेत्तीति ॥ १॥

ॐ यह प्रसिद्ध है कि राजा दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन (देवासुर-संग्राममें देवताओंकी सहायता करनेके लिये) देवराज इन्द्रके प्रिय धाम स्वर्गलोक में गये । वहाँ उनकी अनुपम युद्धकला और पुरुषार्थ से सन्तुष्ट होकर इन्द्रने उनसे कहा प्रतर्दन ! बोलो, मैं तुम्हें क्या वर

दूँ? तब वे प्रसिद्ध वीर प्रतर्दन बोले-'देवराज ! जिस वरको आप मनुष्य-जाति के लिये परम कल्याणमय मानते हों, वैसा कोई वर मेरे लिये आप स्वयं ही वरण करें। यह सुनकर इन्द्रने कहा-'राजन् ! लोकमें यह सर्वत्र विदित है कि कोई भी दूसरेके लिये वर नहीं माँगता, अतः तुम्हीं अपने लिये कोई वर माँगो । प्रतर्दन बोला तब तो मेरे लिये वर का अभाव ही रह गया । ( क्योंकि आप स्वयं तो वर माँगेंगे नहीं, और मुझे क्या माँगना चाहिये- इसका मुझको ज्ञान ही नहीं है। ऐसी दशामें मुझे वर मिलने से रहा । ) प्रतर्दन के ऐसा कहने पर निश्चय ही देवराज इन्द्र अपने सत्यसे विचलित नहीं हुए, (वे वर देने की प्रतिज्ञा कर चुके थे, अतः प्रतर्दनके न माँगनेपर भी अपनी ही ओरसे वर देनेको उद्यत हो गये । ) क्योंकि इन्द्र सत्यस्वरूप हैं। उन प्रसिद्ध देवता इन्द्रने कहा-'प्रतर्दन ! तुम मुझे ही जानो, मेरे ही यथार्थ स्वरूपको समझो। इसे ही मैं मनुष्य जातिके लिये परमकल्याणमय वर मानता हूँ कि वह मुझे भलीभाँति जाने । मैंने त्वष्टा प्रजापतिके पुत्र विश्वरूपको, जिसके तीन मस्तक थे, वज्रसे मार डाला। कितने ही (मिथ्या) संन्यासियोंको जो अपने आश्रमोचित आचारसे भ्रष्ट एवं बहिर्मुख हो चुके थे, टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियोंको बाँट दिया । कितनी ही बार प्रह्लादके परिचारक दैत्य राजाओंको मौतके घाट उतार दिया । पुलोमासुरके परिचारक दान तथा पृथिवीपर रहनेवाले कालखाञ्ज नामक बहुत-से असुरोंका भी समस्त विघ्न-बाधाओंका अतिक्रम करके संहार कर डाला । परतु इतनेपर भी (अहङ्कार और कर्मफलकी कामनासे शून्य होनेके कारण ) मुझ प्रसिद्ध देवराज इन्द्रके एक रोमको भी हानि नहीं पहुँची। मेरा एक बाल भी बाँका नहीं हुआ । इसी प्रकार जो मुझे भलीभाँति जान ले, उसके

पुण्यलोकको किसी भी कर्मसे हानि नहीं पहुँचती । मेरे स्वरूपका ज्ञान रखनेवाले पुरुषको बड़े-से-बड़ा पाप भी हानि नहीं पहुँचा सकता । अधिक क्या कहूँ, उसे पाप लगता ही नहीं । पाप करनेकी इच्छा होनेपर भी उसके मुखसे नील आभा नहीं प्रकट होती- उसका मुँह काला नहीं होता ॥१॥

स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्वायुः
प्राणः प्राणो वा आयुः प्राण उवाचामृतं
यावद्ध्यस्मि`न्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः प्राणेन
ह्येवामुष्मिंल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति प्रज्ञया सत्यसङ्कल्पं स यो म
आयुरमृतमित्युपास्ते सर्वमायुरस्मिंल्लोक एवाप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं
स्वर्गे लोके तद्धैक आहुरेकभूयं वै प्राणा गच्छन्तीति न हि कश्चन
शक्नुयात्सकृद्वाचा नाम प्रज्ञापयितुं चक्षुषा रूपं
श्रोत्रेण शब्दं मनसा ध्यानमित्येकभूयं वै प्राणा भूत्वा
एकैकं सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञापयन्ति वाचं वदतीं सर्वे
प्राणा अनुवदन्ति चक्षुः पश्यत्सर्वे प्राणा अनुपश्यन्ति श्रोत्रं
शृण्वत्सर्वे प्राणा अनुशृण्वन्ति मनो ध्यायत्सर्वे प्राणा
अनुध्यायन्ति प्राणं प्राणन्तं सर्वे प्राणा
अनुप्राणन्तीत्येवमुहैवैतदिति हेन्द्र उवाचास्तीत्येव प्राणानां
निःश्रेयसादानमिति ॥ २॥

वे प्रसिद्ध देवराज इन्द्र बोले- मैं प्रज्ञास्वरूप प्राण हूँ। उस प्राण एव प्रजात्मारूपमें विदित मुझ इन्द्रकी तुम आयु और अमृत रूपसे उपासना करो। आयु प्राण है । प्राण ही आयु है तथा प्राण ही अमृत है। जबतक इस शरीरमें प्राण निवास करता है, तबतक ही आयु है।

प्राणसे ही प्राणी परलोक अमृतत्वके सुखका अनुभव करता है। प्रज्ञासे मनुष्य सत्यका निश्चय और संकल्प-विकल्प करता है। जो आयु' और 'अमृत' रूपसे मुझ इन्द्रकी उपासना करता है, वह इस लोकमें पूरी आयुतक जीवित रहता है। तथा स्वर्गलोक में जानेपर अक्षय अमृतत्वका सुख भोगता है। । इस प्राणके विषय निश्चय ही कोई-कोई विद्वान् इस प्रकार कहते हैं-अवश्य ही सब प्राण ( वाक् आदि समस्त इन्द्रियाँ और प्राण ) एकीभावको प्राप्त होते हैं । कोई भी मनुष्य एक ही समय वाणीसे नाम सूचित करने, नेत्रसे रूप देखने, कानसे शब्द सुनने और मनसे चिन्तन करने समर्थ नहीं हो सकता। इससे सिद्ध होता है कि अवश्य ही समस्त प्राण एकीभावको प्राप्त होते हैं-एक होकर कार्य करते हैं। ये सब एक-एक विषयका बारी-बारीसे अनुभव कराते हैं। । जब वाणी बोलने लगती है, उस समय अन्य सब प्राण मौन होकर उसका अनुमोदन करते हैं। जब नेत्र देखने लगता है, तब अन्य सब प्राण भी उसके पीछे रहकर देखते हैं। जब कान सुनने लगता है, तब अन्य सब प्राण भी उसका अनुसरण करते हुए सुनते हैं, जब मन चिन्तन करने लगता है, तो अन्य सब प्राण भी उसके साथ रहकर चिन्तन करते हैं तथा मुख्य प्राण जब अपना व्यापार करता है, तब अन्य प्राण भी उसके साथ साथ वैसी ही चेष्टा करते हैं ।'-प्रतर्दनने कहा । यह बात ऐसी ही है-इस प्रकार उन सुप्रसिद्ध देवराज इन्द्र ने उत्तर दिया । सब प्राण एक होते हुए भी जो पाँच प्राण हैं, वे निःश्रेयस ( परम कल्याण ) -रूप हैं; निःसदेह ऐसी ही बात है ॥ २ ॥

जीवति वागपेतो मूकान्विपश्यामो जीवति
चक्षुरपेतोऽन्धान्विपश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्विपश्यामो
जीवतो बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्न इत्येवं हि पश्याम इत्यथ खलु
प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थापयति
तस्मादेतमेवोक्थमुपासीत यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः
सहह्येतावस्मिञ्छरीरे वसतः सहोत्क्रामतस्तस्यैषैव
दृष्टिरेतद्विज्ञानं यत्रैतत्पुरुषः सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन
पश्यत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति तदैनं
वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः
शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते
यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः
प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो
लोकास्तस्यैषैव सिद्धिरेतद्विज्ञानं यत्रैतत्पुरुष आर्तो
मरिष्यन्नाबल्य न्येत्य मोहं नैति तदाहुरुदक्रमीच्चित्तं न
शृणोति न पश्यति वाचा वदत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति
तदैनं वाव सर्वैर्नामभिः सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः
सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सहाप्येति स
यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिङ्गा
विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं
विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः ॥ ३॥

वाक्-इन्द्रियसे वञ्चित होनेपर भी मनुष्य जीवित रहता है; क्योंकि हमलोग गूँगों को प्रत्यक्ष देखते हैं। नेत्रहीन मनुष्य भी जीवित रहता है, क्योंकि हमलोग अंधेको जीवित देखते हैं। श्रवण-इन्द्रियसे रहित होनेपर भी मनुष्य जीवित रहता है, क्योंकि हमलोग बहरों को जीवित देखते हैं। मनशक्तिसे शून्य होनेपर भी मनुष्य जीवन धारण कर

सकता हैं, क्योंकि हमलोग छोटे शिशुको जीवित देखते हैं। इतना ही नहीं, प्राण शक्ति के रहने पर बाँह कट जानेपर भी मनुष्य जीवित रहता है, जाँघ कट जाने पर भी वह जीवन धारण कर सकता है ( परतु प्राणके न रहनेपर तो एक क्षण भी जीवित रहना असम्भव है।) यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं । अतः क्रियाशक्ति का उद्बोधक प्राण ही ज्ञानशक्ति का उद्बोधक प्रज्ञात्मा है । ( अतएव यह निःश्रेयसरूप है।) यही इस शरीरको सब ओर से पकड़कर उठाता है। इसीलिये इस प्राणकी ही 'उक्थ' रूपसे उपासना करनी चाहिये । निश्चय ही जो प्रसिद्ध प्राण है, वही प्रज्ञा है। अथवा जो प्रज्ञा बतायी गयी है, वही प्राण है, क्योंकि ये प्रजा और प्राण दोनों साथसाथ ही इस शरीरमें रहते हैं और जीवात्मासे मिलकर साथही-साथ यहाँसे उत्क्रमण करते हैं। इस प्राणमय परमात्माका यही दर्शन ( ज्ञान ) है, यही विज्ञान है कि जिस अवस्थामें यह सोया हुआ पुरुष किसी स्वप्नको नहीं देखता, उस समय वह इस मुख्य प्राणमें ही एकीभावको प्राप्त हो जाता है। उस अवस्था में वाक् सम्पूर्ण नामके साथ इस प्राणमें ही लीन हो जाती है। नेत्र समस्त रूपके साथ इसमें ही लीन हो जाता है। कान समग्र शब्द के साथ इसमें ही लीन हो जाता है तथा मन सम्पूर्ण चिन्तनीय विषयों के साथ इसमें ही लयको प्राप्त हो जाता है । वह पुरुष जब जाग उठता है, उस समय, जैसे जलती हुई आगसे सब दिशाओंकी और चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार इस प्राणस्वरूप आत्मा से समस्त वाक् आदि प्राण निकलकर अपने-अपने योग्य स्थानकी ओर जाते हैं। फिर प्राणों से उनके अधिष्ठाता अग्नि आदि देवता प्रकट होते हैं और देवताओंसे लोक-नाम आदि विषय प्रकट होते हैं। । इस प्राणस्वरूप आत्माकी यह आगे बतायी जानेवाली ही सिद्धि है, यही

विज्ञान है कि जिस अवस्थामें पुरुष रोगसे आर्त हो मरणासन्न हो जाता है, अत्यन्त निर्बलताको पहुँचकर अचेत हो जाता है—किसीको पहचान नहीं पाता, उस समय कहते हैं कि इसका चित्त ( मन) उत्क्रमण कर गया । इसीलिये यह न तो सुनता है, न देखता है, न वाणीसे कुछ बोलता है और न चिन्तन ही करता है। उस समय इस प्राणमें ही वह एकीभावको प्राप्त हो जाता है। उस अवस्थामें वाक् सम्पूर्ण नामके साथ इसमें लीन हो जाती है । नेत्र समस्त रूपके साथ इसमें लीन हो जाता है । कान समग्र शब्द के साथ इसमें लीन हो जाता है तथा मन सम्पूर्ण चिन्तनीय विषयोंके साथ इसमें लीन हो जाता है। वह पुरुष मृत्युके बाद जब पुनः जागता है-जन्मान्तर ग्रहण करता है, उस समय जैसे जलती हुई आगसे सत्र दिशाओंकी ओर चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार इस प्राणस्वरूप आत्मासे वाक् आदि प्राण प्रकट हो अपने-अपने योग्य स्थानकी ओर चल देते हैं। फिर प्राणों से उनके अधिष्ठाता अग्नि आदि देवता प्रकट होते हैं और देवताओसे लोक- नाम आदि विषय प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति वागस्मात्सर्वाणि
नामान्यभिविसृजते वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति
प्राणोऽस्मात्सर्वान्गन्धानभिविसृजते प्राणेन
सर्वान्गन्धानाप्नोति चक्षुरस्मात्सर्वाणि रूपाण्यभिविसृजते
चक्षुषा सर्वाणि रूपाण्याप्नोति श्रोत्रमस्मात्सर्वाञ्छब्दानभिविसृजते
श्रोत्रेण सर्वाञ्छब्दानाप्नोति मनोऽस्मात्सर्वाणि ध्यातान्यभिविसृजते
मनसा सर्वाणि ध्यातान्याप्नोति सैषा प्राणे सर्वाप्तिर्यो वै
प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः स ह

ह्येतावस्मिञ्छरीरे वसतः सहक्रामतोऽथ खलु यथा
प्रज्ञायां सर्वाणि भूतान्येकी भवन्ति तद्व्याख्यास्यामः ॥४॥

वह मुमूर्षु पुरुष जब इस शरीरसे उत्क्रमण करता है, उस समय इन सब इन्द्रियों के साथ ही उत्क्रमण करता है। वाक्-इन्द्रिय इस पुरुष के पास सब नामों का त्याग कर देती है (अतः वह नामको ग्रहण नहीं कर पाता ); क्योंकि वाक् इन्द्रियसे ही मनुष्य नामको ग्रहण कर पाता है। घ्राण इन्द्रिय उसके निकट समस्त गन्धका त्याग कर देती है ( अतः वह गन्धसे भी वञ्चित हो जाता है ); क्योंकि घ्राण इन्द्रिय से ही मनुष्य सब प्रकारके गन्धका अनुभव करता है । नेत्र उसके समीप सब रूपों को त्याग देता है; नेत्रसे ही मनुष्य सब रूप ग्रहण करता है। कान उसके समीप समस्त शब्दोंको त्याग देता है; कानसे ही मनुष्य सब प्रकारके शब्दोंको ग्रहण करता है । मन उसके समीप समस्त चिन्तनीय विषयों को त्याग देता है; मनसे ही मनुष्य सब प्रकारके चिन्तनीय विषयों को ग्रहण करता है । यही प्राणस्वरूप आत्मामें सब इन्द्रियों और विषयों को समर्पित हो जाता है। निश्चय ही जो प्राण है, वही प्रज्ञा है अथवा जो प्रज्ञा है, वही प्राण है, क्योंकि ये दोनों इस शरीरमें साथ-साथ ही रहते हैं और साथ-साथ ही इससे उत्क्रमण करते हैं। अब निश्चय ही जिस प्रकार इस प्रज्ञा में सम्पूर्ण भूत एक हो जाते हैं, इसकी हम स्पष्ट शब्दों में व्याख्या करेंगे ॥४॥

वागेवास्मा एकमङ्गमुदूढं तस्यै नाम परस्तात्प्रतिविहिता
भूतमात्रा घ्राणमेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्य गन्धः
परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा चक्षुरेवास्या

एकमङ्गमुदूढं तस्य रूपं परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा श्रोत्रमेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्य शब्दः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा जिह्वैवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्यान्नरसः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा हस्तावेवास्या एकमङ्गमुदूढं तयोः कर्म परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा शरीरमेवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्य सुखदुःखे परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा उपस्थ एवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्यानन्दो रतिः प्रजातिः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा पादावेवास्या एकमङ्गमुदूढं तयोरित्या परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा प्रज्ञैवास्या एकमङ्गमुदूढं तस्यै धियो विज्ञातव्यं कामाः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा ॥ ५ ॥

अवश्य ही वाक्-इन्द्रियने इस प्रज्ञा के एक अन्नकी पूर्ति की है। बाहर की और उसके विषयरूपसे कल्पित भूतमात्रा (पञ्चभूतका अंश-विशेष) नाम-शब्द है । निश्चय ही प्राण ( घाणेन्द्रिय) ने भी इस प्रज्ञा के एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहर की ओर उसके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह गन्ध है । निश्चय ही नेत्रने भी इस प्रज्ञा के एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहरकी और उसके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह रूप है । निश्चय ही कान ने भी इस प्रज्ञाके एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहरकी ओर उसके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह शब्द है । निश्चय ही जिह्वाने भी इस प्रज्ञा के एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहरकी और उसके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह अन्नका रस है । निश्चय ही हाथों ने भी इस प्रज्ञाके एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहर की ओर उनके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह कर्म है । निश्चय ही शरीरने भी इस प्रजाके एक अन्नकी पूर्ति की है। बाहरकी और उसके विषयरूपसे कल्पित जो

भूतमात्रा है, वह सुख और दुःख है। निश्चय ही उपस्थने भी इस प्रजाके एक अङ्गकी पूर्ति की है, बाहर की ओर इसके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति है । निश्चय ही पैरोंने भी इस प्रज्ञा के एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहरकी ओर उनके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह गमन-क्रिया है । अवश्य ही प्रज्ञाने भी इस प्रज्ञाके एक अङ्गकी पूर्ति की है। बाहरकी ओर उसके विषयरूपसे कल्पित जो भूतमात्रा है, वह बुद्धिके द्वारा अनुभव करने योग्य वस्तु और कामनाएँ हैं ॥ ५ ॥

प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि सामान्याप्नोति
प्रज्ञया प्राणं समारुह्य प्राणेन सर्वान्गन्धानाप्नोति
प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य सर्वाणि रूपाण्याप्नोति प्रज्ञया
श्रोत्रं समारुह्य श्रोत्रेण सर्वाञ्छब्दानाप्नोति प्रज्ञया
जिह्वां समारुह्य जिह्वाया सर्वानन्नरसानाप्नोति प्रज्ञया
हस्तौ समारुह्य हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्माण्याप्नोति प्रज्ञया
शरीरं समारुह्य शरीरेण सुखदुःखे आप्नोति प्रज्ञयोपस्थं
समारुह्योपस्थेनानन्दं रतिं प्रजातिमाप्नोति प्रज्ञया पादौ
समारुह्य पादाभ्यां सर्वा इत्या आप्नोति प्रज्ञयैव धियं
समारुह्य प्रज्ञयैव धियो विज्ञातव्यं कामानाप्नोति ॥ ६॥

प्रज्ञासे वाक् इन्द्रियपर आरूढ़ होकर मनुष्य वाणीके द्वारा नामों को ग्रहण करता है । प्रज्ञा से घाणेन्द्रिय पर आरूढ़ होकर उसके द्वारा समस्त गंधों को ग्रहण करता है । प्रज्ञासे नेत्रपर आरूढ़ होकर नेत्रसे सब रूपों को ग्रहण करता है। प्रज्ञा से श्रवण इन्द्रियपर आरूढ़ होकर उसके द्वारा सब प्रकारके शब्दको ग्रहण करता है। प्रज्ञा से जिह्वापर

आरूढ़ होकर जिह्वा से सम्पूर्ण अन्नरसों को ग्रहण करता है। प्रज्ञा से हाथ पर आरूढ़ होकर हाथ से समस्त कर्मों को ग्रहण करता है । प्रज्ञा से शरीरपर आरूढ़ होकर शरीरसे भोग और पीड़ा जनित सुख-दुःखको ग्रहण करता है । प्रज्ञा से उपस्थपर आरूढ़ होकर उपस्थ से आनन्द, रति और प्रजोत्पत्तिको ग्रहण करता है। प्रज्ञा से पैरों पर आरूढ़ होकर पैरों से सम्पूर्ण गमन क्रियाओंको ग्रहण करता है । तथा प्रज्ञा से ही बुद्धिपर आरूढ़ होकर उसके द्वारा अनुभव करनेयोग्य वस्तु एवं कामनाओंको ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

न हि प्रज्ञापेता वाङ्नाम किंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे
मनोऽभूदित्याह नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति न हि
प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं कंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे
मनोऽभूदित्याह नाहमेतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति नहि
प्रज्ञापेतं चक्षू रूपं किंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे
मनोऽभूदित्याह नाहमेतद्रूपं प्राज्ञासिषमिति नहि
प्रज्ञापेतं श्रोत्रं शब्दं कंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे
मनोऽभूदित्याह नाहमेतं शब्दं प्राज्ञासिषमिति नहि
प्रज्ञापेता जिह्वान्नरसं कंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे
मनोऽभूदित्याह नाहमेतमन्नरसं प्राज्ञासिषमिति नहि
प्रज्ञापेतौ हतौ कर्म किंचन प्रज्ञपेतामन्यत्र मे
मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्कर्म प्राज्ञासिषमिति नहि
प्रज्ञापेतं शरीरं सुखदुःखं किंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र
मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्सुखदुःखं प्राज्ञासिषमिति
नहि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं प्रजातिं कंचन

प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतमानन्दं रतिं
प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतौ पादावित्यां
कांचन प्रज्ञपयेतामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह
नाहमेतामित्यां प्राज्ञसिषमिति नहि प्रज्ञापेता धीः काचन सिद्ध्येन्न
प्रज्ञातव्यं प्रज्ञायेत् ॥ ७॥

प्रज्ञा से रहित होनेपर वाक् इन्द्रिय किसी भी नामका बोध नहीं करा सकती; क्योंकि उस अवस्थामें मनुष्य यों कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था । मैं इस नामको नहीं समझ सका । प्रज्ञा से पृथक् होनेपर प्राण-इन्द्रिय किसी भी गन्धका बोध नहीं कर सकती । उस दशामें मनुष्य यों कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इस गन्धको नहीं जान सका । प्रज्ञा से पृथक् होकर नेत्र किसी भी रूपका ज्ञान नहीं करा सकता । उस दशामें मनुष्य यों कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इस रूपको नहीं पहचान सका । प्रज्ञा से पृथक् रहकर कान किसी भी शब्दका ज्ञान नहीं करा सकता । उस दशामें मनुष्य यह कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इस शब्दको नहीं समझ सका । प्रज्ञा से पृथक् रहकर जिह्वा किसी भी अन्न रसका अनुभव नहीं करा सकती । उस दशामें मनुष्य यह कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इस अन्न-रसको अनुभव न कर सका प्रज्ञासे पृथक् होकर हाथ किसी भी कर्मका ज्ञान नहीं करा सकते । उस दशामें मनुष्य यह कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इस कर्मको नहीं जान सका । प्रज्ञासे पृथक होकर शरीर किसी सुख दुःखका ज्ञान नहीं करा सकता । उस दशामें मनुष्य

कहता है कि मेरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इन सुख दुःखको नहीं जान सका । प्रज्ञा से पृथक हो उपस्थ किसी भी आनन्द, रति और प्रजोत्पत्तिका ज्ञान नहीं करा सकता, उस दशा में मनुष्य कहता है कि मेरा मन अन्यत्र गया था, इसलिये मैं इस आनन्द, रति और प्रजोत्पत्तिका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सका । प्रज्ञासे पृथक रहकर दोनों पैर किसी भी गमन-क्रियाका बोध नहीं करा सकते; उस दशा मनुष्य यह कहता है कि मैरा मन अन्यत्र चला गया था, इसलिये मैं इस गमन क्रियाका अनुभव नहीं कर सका । कोई भी बुद्धिवृत्ति प्रज्ञासे पृथक होनेपर नहीं सिद्ध हो सकती, उसके द्वारा ज्ञातव्य वस्तुको बोध नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यान्न गन्धं
विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्यान्न रूपं विजिज्ञासीत रूपविदं विद्यान्न
शब्दं विजिज्ञासीत श्रोतारं विद्यान्नान्नरसं
विजिज्ञासीतान्नरसविज्ञातारं विद्यान्न कर्म विजिज्ञासीत
कर्तारं विद्यान्न सुखदुःखे विजिज्ञासीत
सुखदुःखयोर्विज्ञातारं विद्यान्नानन्दं रतिं प्रजातिं विजिज्ञासीतानन्दस्य
रतेः प्रजातेर्विज्ञातारं विद्यान्नेत्यां विजिज्ञासीतैतारं
विद्यान्नमनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात्ता वा एता दशैव
भूतमात्रा अधिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा अधिभूतं यद्धि
भूतमात्रा न स्युर्न प्रज्ञामात्राः स्युर्यद्वा प्रज्ञामात्रा न स्युर्न
भूतमात्राः स्युः ॥ ८॥

न ह्यन्यतरतो रूपं किंचन सिद्ध्येन्नो एतन्नाना तद्यथा
रथस्यारेषु नेमिरर्पिता नाभावरा अर्पिता एवमेवैता

भूतमात्राः प्रज्ञामात्रा स्वर्पिताः प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिता एष प्राण एव प्रज्ञात्मानन्दोऽजरोऽमृतो न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कर्मणा कनीयानेष ह्येवैनं साधुकर्म कारयति तं यमन्वानुनेषत्येष एवैनमसाधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो नुनुत्सत एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेश्वरः स म आत्मेति विद्यात्स म आत्मेति विद्यात् ॥ ९॥

वाणीको जाननेकी इच्छा न करे; वक्ताको-वाणी प्रेरक आत्माको जाने । गन्धको जाननेकी इच्छा न करे। जो गन्धको ग्रहण करनेवाला आत्मा है, उसको जाने । रूपको जाननेकी इच्छा न करे; रूपके ज्ञाता साक्षी आत्माको जाने । शब्द को जाननेकी इच्छा न करे, उसे सुननेवाले आत्माको जाने । अन्नके रसको जाननेकी इच्छा न करे; उस अन्नरसके ज्ञाता आत्माको जाने । कर्मको जाननेकी इच्छा न करे; कर्ता ( आत्मा ) को जाने । सुख-दुःख जाननेकी इच्छा न करे, सुख-दुःखके विज्ञाता (साक्षी आत्मा) को जाने । आनन्द, रति और प्रजोत्पत्तिको जानने की इच्छा न करे; आनन्द, रति और प्रजोत्पत्तिके ज्ञाता (आत्मा ) को जाने । गमन-क्रियाको जाननेकी इच्छा न करे; गमन करनेवाले ( साक्षी आत्मा) को जाने । मनको जाननेकी इच्छा न करे; मनन करनेवाले ( आत्मा ) को जाने । वे ये दस ही भूतमात्राएँ ( नाम आदि विषय ) हैं, जो प्रज्ञामें स्थित हैं तथा प्रज्ञाकी भी दस ही मात्राएँ ( वाक् आदि इन्द्रियरूप ) हैं, जो भूतोंमें स्थित हैं । यदि वे प्रसिद्ध भूतमात्राएँ न हों तो प्रज्ञाकी मात्राएँ भी नहीं रह सकती और प्रज्ञा की मात्राएँ न हों तो भूतमात्राएँ भी नहीं रह सकतीं । इन दोनों में से किसी भी एकके द्वारा किसी भी रूप (विषय अथवा इन्द्रिय) की सिद्धि नहीं हो सकती है। इनमें नानात्व नहीं है। अर्थात् प्रज्ञामात्रा

और भूतमात्राका जो स्वरूप है, उसमें भेद नहीं है। वह इस प्रकार समझना चाहिये । जैसे रथकी नेमि अरों में और अरे रथकी नाभिकेआश्रित हैं, इसी प्रकार ये भूतमात्राएँ प्रज्ञामात्रामें स्थित हैं और प्रज्ञामात्राएँ प्राणमें प्रतिष्ठित हैं। वह यह प्राण ही प्रज्ञात्मा, आनन्दमय, अजर और अमृतरूप है । वह न तो अच्छे कर्मसे बढ़ता है और न छोटे कर्मसे छोटा ही होता है । यह प्राण एवं प्रज्ञारूप चेतन परमात्मा ही इस देहाभिमानी पुरुषसे साधु कर्म करवाता है। वह भी उसीसे करवाता है, जिसे इन प्रत्यक्ष लोकसे ऊपर ले जाना चाहता है; तथा जिसे वह इन लोकी अपेक्षा नीचे ले जाना चाहता है, उससे असाधु कर्म करवाता है। यह लोकपाल है, यह लोकको अधिपति है और यह सर्वेश्वर है । इन सब गुणसे युक्त वह प्राण ही मेरा आत्मा है- इस प्रकार जाने । वह मेरा आत्मा है, इस प्रकार जाने ॥ ८-९ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥

## ॥अथ चतुर्थोध्याये॥

## चतुर्थ अध्याय

गार्ग्यो ह वै बालाकिरनूचानः संस्पष्ट आस
सोऽयमुशिनरेषु संवसन्मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशीविदेहेष्विति
सहाजातशत्रुं काश्यमेत्योवाच ब्रह्म ते ब्रवाणीति तं
होवाच अजातशत्रुः सहस्रं ददस्त एतस्यां वाचि जनको जनक इति
वा उ जना धावन्तीति ॥ १॥

गर्गगोत्र में उत्पन्न एवं गार्ग्य नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जो बलाका के पुत्र थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदका अध्ययन तो किया ही था, वे वेद के अच्छे वक्ता भी थे। उन दिनों संसार में सब ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। वे उशीनर देशके निवासी थे, परन्तु सदा विचरण करते रहनेके कारण कभी मत्स्यदेशमें, कभी कुरु पाञ्चालमें और कभी काशी तथा मिथिला प्रान्त में रहते थे। इस प्रकार वे सुप्रसिद्ध गार्ग्य एक दिन काशीके विद्वान् राजा अजातशत्रुके पास गये और अभिमानपूर्वक बोले-'राजन् ! मैं तुम्हारे लिये ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करूँगा ।' गार्ग्य के यों कहनेपर उन प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा-'ब्रह्मन् ! आपकी

इस बातपर हम आपको एक हजार गौएँ देते हैं । निश्चय ही आजकल लोग जनक-जनक कहते हुए ही उनके समीप दौड़े जाते हैं ॥ १ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपास इति
तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा
बृहत्पाण्डरवासा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धेति
वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां
भूतानां मूर्धा भवति ॥ २॥

तब वे प्रसिद्ध बलाका-पुत्र गार्ग्य बोले-'राजन् ! यह जो सूर्यमण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी में ब्रह्मबुद्धिसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा-'नहीं नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें । निश्चय ही यह सबसे महान् और शुक्ल वस्त्र धारण करनेवाला है । यह सबका अतिक्रमण करके-सबसे ऊँची स्थितिमें स्थित है तथा यह सबका मस्तक है। इस प्रकार मैं इसकी उपासना करता हूँ इसी प्रकार वह मनुष्य भी, जो इस प्रसिद्ध सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुषकी इस रूप में उपासना करता है, सबका अतिक्रमण करके-सबसे ऊँची स्थितिमें स्थित होता है तथा समस्त भूतों का मस्तक माना जाता है? ॥ २॥

स एवैष बालाकिर्य एवैष चन्द्रमसि पुरुषस्तमेवाहं
ब्रह्मोपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्समवादयिष्ठाः सोमो
राजान्नस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो
हैतमेवमुपास्तेऽन्नस्यात्मा भवति ॥ ३॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- यह जो चन्द्रमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।' यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहीं नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें। यह सोम राजा है और अन्न का आत्मा है । निश्चय ही इस प्रकार मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इस प्रसिद्ध चन्द्रमण्डलान्तर्गत पुरुष की इस रूपमें उपासना करता है, अन्नका आत्मा होता है' ॥३ ॥

सहोवाच बालाकिर्य एवैष विद्युति पुरुष एतमेवाहं
ब्रह्मोपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा
मैतस्मिन्समवादयिष्ठास्तेजस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो
हैतमेवमुपास्ते तेजस्यात्मा भवति ॥ ४॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'यह जो विद्युन्मण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रु ने कहा- नहीं-नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें। यह तेजका आत्मा है- निश्चय ही इस भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इस प्रसिद्ध विद्युन्मण्डलान्तर्गत पुरुष की इस रूप में उपासना करता है, तेजका आत्मा होता है ॥ ४ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष स्तनयित्नौ पुरुष एतमेवाहं
ब्रह्मोपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः

शब्दस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते शब्दस्यात्मा भवति ॥ ५॥

सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'यह जो मेघमण्डलमें अन्तयामी पुरुष है, इसीकी में ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।' यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा-'नही नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें। यह शब्द का आत्मा है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इसे प्रसिद्ध मेघ मण्डलान्तर्गत पुरुषकी इस रूपमें उपासना करता है, शब्द का आत्मा हो जाता है ॥५॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष आकाशे पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः पूर्णमप्रवर्ति ब्रह्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिर्नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा कालात्प्रवर्तते ॥ ६॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'यह जो आकाशमण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहीं-नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें। यह पूर्ण, प्रवृत्तिशून्य (निष्क्रिय) और ब्रह्म है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ, इसी प्रकार वह भी, जो इस प्रसिद्ध आकाशमण्डलान्तर्गत पुरुष की इस रूप में उपासना करता है, प्रजा और पशुसे पूर्ण होता है। इसके

सिवा, न तो स्वयं वह उपासक और न उसकी संतान ही समयसे पहले मृत्युको प्राप्त होती है? ॥ ६ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष वायौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते जिष्णुर्ह वा पराजिष्णुरन्यतरस्य ज्यायन्भवति ॥ ७॥

सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले-'यह जो वायुमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ ।' यह सुनकर उनसे प्रसिद्धराजा अजातशत्रुने कहा- नहीं-नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें। यह इन्द्र (परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न ), वैकुण्ठ (कहीं भी कुण्ठित न होनेवाला ) और कभी परास्त न होनेवाली सेना है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इस प्रसिद्ध वायुमण्डलान्तर्गत पुरुषकी इस रूपमें उपासना करता है, अवश्य ही विजयशील, दूसरोंसे पराजित न होनेवाला और शत्रुओंपर विजय पानेवाला होता है? ॥ ७ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽग्नौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते विषासहिर्वा एष भवति ॥ ८॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले-'यह जो अग्निमण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- 'नहीं-नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें। यह विषासहि (दूसरोंके वेग को सह सकनेवाला) है निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह उपासक भी, जो इस प्रसिद्ध अग्निमण्डलान्तर्गत पुरुषकी इस रूपमें उपासना करता है, यह उपासनाके पश्चात् विषासहि होता है। ॥ ८ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽप्सु पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा नाम्न्यस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नाम्न्यस्यात्मा भवतीतिअधिदैवतमथाध्यात्मम् ॥ ९॥

सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- यह जो जलमण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहीं नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें। यह नामका आत्मा है ( अर्थात् जितने भी नामधारी जीव हैं, उन सबका आत्मा-जीवनरूप है)–निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इस प्रसिद्ध जलमण्डलान्तर्गत पुरुषकी इस रूपमें उपासना करता है, नामधारी जीवमात्रका आत्मा होता है । यह अधिदैवत उपासना बतायी गयी । अब अध्यात्म-उपासना बतायी जाती है ॥ ९ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष आदर्शे पुरुषस्तमेवाहमुपास
इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः प्रतिरूप इति
वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रतिरूपो हैवास्य
प्रजायामाजायते नाप्रतिरूपः ॥ १०॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- यह जो दर्पणमें । पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ । यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा-नहीं-नहीं, इसके विषयमे आप संवाद न करें । यह प्रतिरूप है—निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इस दर्पणान्तर्गत पुरुषकी इस रूप में उपासना करता है, उस प्रतिरूपगुणसे विभूषित होता है। उसकी संततिमें सब उसके अनुरूप ही जन्म लेते हैं, प्रतिकूल रूप और स्वभाववाले नहीं ॥ १० ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष प्रतिश्रुत्काया
पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा
द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते
विन्दते द्वितीयाद्वितीयवान्भवति ॥ ११॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'यह जो प्रतिध्वनिमें पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहींनहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें। यह द्वितीय और अनपग है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ । इसी प्रकार- वह भी, जो इस प्रतिध्वनिगत पुरुषकी इस रूप में उपासना करता है, अपने सिवा द्वितीय (स्त्री-

पुत्रादि) को प्राप्त करता है तथा सदा द्वितीयवान् बना रहता है ( अर्थात् उन स्त्री-पुत्र आदिसे उसका वियोग नहीं होता ) ॥ ११ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष शब्दः पुरुषमन्वेति
तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा
असुरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं
नास्य प्रजा पुराकालात्सम्मोहमेति ॥ १२॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'यह जो जाते हुए पुरुषके पीछे ध्वन्यात्मक शब्द उसका अनुसरण करता है, उसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा-नहीं-नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें। यह प्रारूप है— निश्चय ही इसी भावसे में इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार वह भी, जो इसकी इस रूप में उपासना करता है, न तो स्वयं पूरी आयुके पहले मृत्युको प्राप्त होता है और न उसकी संतान ही पूर्ण आयुके पहले निधनको प्राप्त होती है। ॥ १२ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष च्छायायां
पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं
होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठामृत्युरिति
वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नो एव स्वयं नास्य
प्रजा पुरा कालात्प्रमीयते ॥ १३॥

सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले-'यह जो छायामय पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ । यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रु ने कहा-नहीं-नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें । यह मृत्युरूप है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ । इसी प्रकार वह भी, जो इसकी इस रूपमें उपासना करता है, न तो स्वयं ही समयसे पहले मृत्युको प्राप्त होता है और न उसकी सन्तान ही समयसे पहले जीवनसे हाथ धोती है ॥ १३ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष शारीरः पुरुषस्तमेवाहमुपास
इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठाः
प्रजापतिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रजायते
प्रजया पशुभिः ॥ १४॥

उन सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य ने कहा-'यह जो शरीरान्तार्वर्ती पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा नहीं-नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें । यह प्रजापतिरूप है- निश्चय ही इस भावसे ही मैं इसकी उपासना करता हूँ, इसी प्रकार वह भी, जो इसकी इस रूपमें उपासना करता है, प्रजा और पशुओंसे सम्पन्न होता है? ॥ १४ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष प्राज्ञ आत्मा येनैतत्सुप्तः
स्वप्नमाचरति तमेवाहमुपास इति तं
होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा यमो राजेति
वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते सर्वं हास्मा इदं

श्रैष्ठ्याय गम्यते ॥ १५॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'यह जो प्रज्ञासे नित्य संयुक्त प्राणरूप आत्मा है, जिससे एकताको प्राप्त होकर यह सोया हुआ पुरुष स्वप्न मार्ग से विचरता है (नाना प्रकारके स्वप्न को अनुभव करता है); उसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ। यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहीं-नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें। यह यम राजा है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ। इसी प्रकार जो इसकी इस रूप में उपासना करता है, उस उपासककी श्रेष्ठताके लिये यह सारा जगत् नियमपूर्वक चेष्टा करता है ॥ १५ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष
दक्षिणेक्षन्पुरुषस्तमेवाहमुपास
इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा नान्न
आत्माग्निरात्मा ज्योतिष्ट आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो
हैतमेवमुपास्त एतेषां सर्वेषामात्मा भवति ॥ १६॥

उन सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य ने कहा- 'यह जो दाहिने नेत्रमें पुरुष है, उसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ । यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहीं-नहीं, इसके विषयमें आप संवाद न करें। यह नामका आत्मा, अग्नि का आत्मा तथा ज्योति का आत्मा है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ, इसी प्रकार वह भी, जो इसकी इस रूपमें उपासना करता है, इन सबका आत्मा होता है। ॥ १६ ॥

स होवाच बालाकिर्य एवैष सव्येक्षन्पुरुषस्तमेवाहमुपास
इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्त्समवादयिष्ठाः
सत्यस्यात्मा विद्युत आत्मा तेजस आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स
यो हैतमेवमुपास्त एतेषां सर्वेषामात्मा भवतीति ॥ १७॥

वे सुप्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य बोले – 'यह जो बायें नेत्र में पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ । यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- नहीं-नहीं, इसके विषय आप संवाद न करें। यह सत्यका आत्मा, विद्युत् का आत्मा और तेज का आत्मा है- निश्चय ही इसी भावसे मैं इसकी उपासना करता हूँ । इसी प्रकार वह भी, जो इसकी इस रूप में उपासना करता है, इन सबका आत्मा होता है? ॥ १७ ॥

तत उ ह बालाकिस्तूष्णीमास तं होवाचाजातशत्रुरेतावन्नु
बालाकीति एतावद्धीति होवाच बालाकिस्तं
होवाचाजातशत्रुर्मृषा वै किल मा संवदिष्ठा ब्रह्म
ते ब्रवाणीति होवाच यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां
कर्ता यस्य वैतत्कर्म स वेदितव्य इति तत उ ह बालाकिः
समित्पाणिः प्रतिचक्रामोपायानीति तं होवाचजातशत्रुः
प्रतिलोमरूपमेव स्याद्यत्क्षत्रियो ब्राह्मणमुपनयीतैहि व्येव
त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं ह पाणावभिपद्य प्रवव्राज तौ
ह सुप्तं पुरुषमीयतुस्तं हाजातशत्रुरामन्त्रयांचक्रे
बृहत्पाण्डरवासः सोमराजन्निति स उ ह तूष्णीमेव शिश्ये
तत उ हैनं यष्ट्या विचिक्षेप स तत एव समुत्तस्थौ तं

होवाचाजातशत्रुः क्वैष एतद्वा लोके पुरुषोऽशयिष्ट
क्वैतदभूत्कुत एतदागादिति तदु ह बालाकिर्न विजज्ञौ ॥ १८॥

उसके बाद बलाकानन्दन गार्ग्य चुप हो गये । तब उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- बालाके ! बस, क्या इतना ही आपका ब्रह्मज्ञान है ? इस प्रश्नपर बलाकानन्दन गार्ग्य बोले- 'हाँ, इतना ही है । तब उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- 'तव तो व्यर्थ ही आपने मेरे साथ यह संवाद किया था कि मैं तुम्हें ब्रह्मका उपदेश करूँगा । बलाकानन्दन ! अवश्य ही जो आपके बताये हुए इन सभी सोपाधिक पुरुषका कर्ता है। अथवा ये सभी जिसके कर्म हैं, वही जाननेयोग्य है।' राजाके यह कहने पर वे प्रसिद्ध बलाकानन्दन गार्ग्य हाथमें समिधा लेकर उनके पास गये और बोले-'मैं आपको गुरु बनानेके लिये समीप आता हूँ ।' यह सुनकर उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा- 'यह विपरीत बात हो जायगी, यदि क्षत्रिय ब्राह्मण को शिष्य बनानेके लिये अपने समीप बुलाये । इसलिये आइये ( एकान्त में चलें ) वहाँ आपको मैं अवश्य ब्रह्मका ज्ञान कराऊँगा ।' यों कहकर राजाने बालाकि गार्ग्य का हाथ पकड़ लिया और वहाँ से चल दिये । वे दोनों एक सोये हुए पुरुषके पास चले आये । वहाँ प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने उस सोये हुए पुरुषको पुकारा- ओ बृहन् ! हे पाण्डरवासा ! हे सोम राजन् । इस प्रकार सम्बोधन करनेपर भी वह पुरुष चुपचाप सोया ही रहा । तब राजाने उस पुरुषके शरीरपर छड़ीसे आघात किया । वह सोया हुआ पुरुष छड़ीकी चोट लगते ही उठकर खड़ा हो गया । तब बालाकि गार्ग्य से राजा अजातशत्रुने कहा-'बालाके ! यह पुरुष इस प्रकार अचेत-सा होकर कहाँ सोता था ? किस प्रदेशमें इसको शयन हुआ

था ? और इस जाग्रत्-अवस्थाके प्रति यह कहाँसे चला आया है?' ॥ १८ ॥

तं होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतद्बालाके पुरुषोऽशयिष्ट
यत्रैतदभूद्यत एतदागाद्धिता नाम हृदयस्य नाड्यो
हृदयात्पुरीततमभिप्रतन्वन्ति यथा सहस्रधा केशो
विपाटितस्तावदण्व्यः पिङ्गलस्याणिम्ना तिष्ठन्ते शुक्लस्य
कृष्णस्य पीतस्य लोहितस्येति तासु तदा भवति यदा सुप्तः
स्वप्नं न कंचन पश्यत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति
तथैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः
सहाप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः
शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सहाप्येति स यदा
प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिङ्गा
विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं
विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकास्तद्यथा क्षुरः
क्षुरध्याने हितः स्याद्विश्वम्भरो वा विश्वम्भरकुलाय
एवमेवैष प्राज्ञ आत्मेदं शरीरमनुप्रविष्ट आ लोमभ्य
आ नखेभ्यः ॥ १९॥

राजाके इस प्रकार पूछने पर भी बालाकि गार्ग्य इस रहस्य को समझ न सके । तब उनसे प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने फिर कहा- 'बालाके ! यह पुरुष इस प्रकार अचेत सा होकर जहाँ सोता था, जहाँ इसका शयन हुआ था और इस जाग्रत् अवस्था के प्रति यह जहाँसे आया है, वह स्थान यह है- 'हिता' नामसे प्रसिद्ध बहुत सी नाड़ियाँ हैं, जो हृदय कमलसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं। वे हृदय-कमल से निकलकर सम्पूर्ण

शरीरमें व्याप्त होकर फैली हुई हैं। इनका परिमाण इस प्रकार है- एक केश को एक हजार बार चीरने पर जो एक खण्ड हो सकता है, उतनी ही सूक्ष्म वे सब-की-सब नाडियाँ हैं। पिङ्गल अर्थात् नाना प्रकार के रंग का जो अति सूक्ष्मतम रस है, उससे वे पूर्ण हैं । शुक्ल, कृष्ण, पीत और रक्त-इन सभी रंग के सूक्ष्मतम अंश से वे युक्त हैं। उन्हीं नाड़ियोंमें वह पुरुष सोते समय स्थित रहता है । जिस समय सोया हुआ पुरुष कोई स्वप्न नहीं देखता, उस समय वह इस प्राणमें ही एकीभावको प्राप्त हो जाता है । उस समय वाक् सम्पूर्ण नाम के साथ इस प्राणमें ही लीन हो जाती है। नेत्र समस्त रूपके साथ इसमें ही लीन हो जाता है। कान समग्र शब्दके साथ इसमें ही लीन हो जाता है तथा मन भी सम्पूर्ण चिन्तनीय विषयोंके साथ इसमें ही लयको प्राप्त हो जाता है । वह पुरुष जब जाग उठता है, उस समय जैसे जलती हुई आगसे सब दिशाओंकी ओर चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार इस प्राणस्वरूप आत्मासे समस्त वाक् आदि प्राण निकलकर अपने-अपने भोग्य-स्थानकी ओर जाते हैं। फिर प्राणों से उनके अधिष्ठाता अग्नि आदि देवता प्रकट होते हैं और देवताओंसे लोक-नाम आदि विषय प्रकट होते हैं ॥१९॥

तमेतमात्मानमेतमात्मनोऽन्ववस्यति यथा श्रेष्ठिनं
स्वास्तद्यथा श्रेष्ठैः स्वैर्भुङ्क्ते यथा वा श्रेष्ठिनं
स्वा भुञ्जन्त एवमेवैष प्राज्ञ आत्मैतैरात्मभिर्भुङ्क्ते ।
यथा श्रेष्ठी स्वैरेवं वैतमात्मानमेत आत्मनोऽन्ववस्यन्ति
यथा श्रेष्ठिनं स्वाः स यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मानं न
विजज्ञौ तावदेनमसुरा अभिबभूवुः स यदा विजज्ञावथ

हत्वासुरान्विजित्य सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं
स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति तथो एवैवं विद्वान्सर्वेषां
भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति य एवं
वेद य एवं वेद ॥ २०॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

उस आत्माकी उपलब्धि का दृष्टान्त इस प्रकार है। जैसे क्षुरधान (छूरा रखनेके लिये बनी हुई चर्ममयी पेटी) में छूरी रक्खा रहता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्वती हृदय-कमलमें अङ्गुष्ठमात्र पुरुषके रूप में परमात्माकी उपलब्धि होती है। तथा जिस प्रकार अग्नि अपने नीड़भूत अरणी आदि काष्ठमें सर्वत्र व्याप्त रहती है, उसी प्रकार यह प्रज्ञानवान् आत्मा इस आत्मा नामसे कहे जानेवाले शरीरमें नख से शिखा तक व्याप्त है। उस इस साक्षी आत्माका ये वाक् आदि आत्मा अनुगत सेवककी भाँति अनुसरण करते हैं- ठीक उसी तरह, जैसे श्रेष्ठ गुणसे युक्त धनी का, उसके आश्रित रहनेवाले स्वजन अनुवर्तन करते हैं तथा जिस प्रकार धनी अपने स्वजन के साथ भोजन करता है और स्वजन जैसे उस धनीको ही भोगते हैं, उसी प्रकार यह प्रज्ञावान् आत्मा इन वाक् आदि आत्माके साथ भोगता है तथा निश्चय ही इस आत्माको ये वाक् आदि आत्मा भोगते हैं। वे प्रसिद्ध देवता इन्द्र जबतक इस आत्माको नहीं जानते थे, तबतक असुरगण इनका पराभव करते रहते थे; किंतु जब वे इस आत्माको जान गये, तब असुरों को मारकर, उन्हें पराजित करके सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठताका पद, स्वर्ग का राज्य और त्रिभुवनको आधिपत्य पा गये । उसी प्रकार यह जाननेवाला विद्वान् सम्पूर्ण पापोंका नाश करके समस्त प्राणियों में श्रेष्ठताका पद, स्वराज्य और प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है । जो यह जानता है, जो यह जानता है, उसे पूर्वोक्त फल मिलता है' ॥ २० ॥

॥ इति चतुर्थ अध्याय॥

# शान्ति पाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि।
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीर।
अनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि।
सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु।
अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूंगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

**॥ ॐ इति कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्॥**

**॥ कौषीतकि समाप्त ॥**

संकलनकर्ता:

**श्री मनीष त्यागी**

**संस्थापक एवं अध्यक्ष**
**श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन**

**www.shdvef.com**

**॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥**